आमुख

पं० जवाहरलाल नेहरू युग-पुरुष थे, महामानव थे। उनका जन्म वैसे परिवार में हुआ था, जिस पर लक्ष्मी की कृपा थी। उनका लालन-पालन शाही ढंग से हुआ था, अंग्रेजी तरीके से हुआ था। अभाव क्या होता है, इसका अनुभव उन्हें हुआ नहीं था, होने नहीं दिया गया था।

विलायत के उन्मुक्त वातावरण में युवक जवाहरलाल का मानसिक विकास हुआ—स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की भावनाएँ प्रबल रूप से उनके व्यक्तित्व का अविच्छिन्न अंग बनीं। मार्क्स और लेनिन के नये दर्शन ने उनको एक नई स्फूर्ति दी। गरीबी और सामाजिक विषमताओं का मात्र बौद्धिक अनुभव कराया—व्यावहारिक अनुभव तो उन्हें कभी होने वाला था ही नहीं और न हुआ।

गांधी के सम्पर्क में उनकी भारतीयता निखरी—वे मानववाद, विश्ववाद और विश्वशांति के अग्रदूत बने। सहअस्तित्व प्राचीन भारतीय संस्कृति का मौलिक तत्त्व है, इसको उन्होंने परखा और देखा कि विश्व-और मानवता को स्थायित्व देने का अकेला मार्ग सह-अस्तित्व है। राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र राष्ट्रों का विश्वसंघ, भौतिक उपादानों का प्रचुर उत्पादन और संघर्ष शून्य विश्व मानव को सुखी, सन्तुष्ट और चितारहित बनाने के प्रयत्न हैं। यह सब हो जाय, पर मानव मानवता खो बैठे, तो विश्व-आकर्षक स्थान न रह जायगा, रहने लायक भी न रह जायगा। इसलिए उनकी मान्यता बनी मानव की उत्कृष्टता को अक्षुण्ण रखना। समाज की वैसी व्यवस्था जो मानवता को कुण्ठित न करे, मानव को छोटा न समझे, प्रत्येक मानव की उसकी अन्तर्निहित गुण-शक्ति को प्रस्फुटित होने का पूर्ण अवसर दे सके। व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रत्येक

व्यक्ति को समान अवसर, अभाव का अति शीघ्र अंत, सबकी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति; ये उनके लक्ष्य बने, जो उन्हें बेचैन रखने लगे थे।

हां, तो जवाहरलाल महान थे, महामानव थे, युग-पुरुष थे। इसलिए कि वे युग को पहिचानते थे, युग-धर्म को जानते थे, प्रत्येक मानव से सान्निध्य स्थापित कर लेते थे अपनापन कायम कर लेते थे, व्याप्त हो जाते थे प्रत्येक में और प्रत्येक अनुभव करता था मानो उसके सुख-दुःख के साथी बन गये जवाहरलाल। और इसी अर्थ में वे महामानव थे। यह उनके व्यक्तित्व का महान् और सबसे आकर्षक अंग था।

पिछले साल की बात है—अप्रैल १९६३ की। रोहतक के सभी बाल्मीकि स्त्री-पुरुष दिल्ली आ गये थे, जवाहरलाल की कोठी के फाटक पर, अपनी फरियाद सुनाने के लिए उनको। उनका पड़ाव पड़ गया था वहाँ पर।

उस दिन संध्या को आठ बजे मैं जवाहरलालजी से मिलने गया था किसी आवश्यक समस्या पर परामर्श करने। साढ़े आठ बजे तक बातें होती रहीं। फिर मैंने कहा कि अब चलता हूँ, आपके भोजन का वक्त हुआ। उन्होंने कहा—चलो तुम्हारे साथ ही नीचे चलता हूँ, तुम भी रहना। देखा नहीं रोहतक से आये हुए भंगियों का मजमा फाटक पर। उनके प्रतिनिधियों से बातें कर लूँ। हम लोग नीचे आये। वहाँ बाल्मीकि भाइयों के ४-५ प्रतिनिधि आये, उनसे बातें होती रहीं, करीब एक घण्टे तक। फिर उन्होंने आग्रह किया कि पंडितजी सभी लोगों को जो फाटक के बाहर पड़े हैं—दर्शन दें। पं० जी ने मुझसे पूछा, "तुम्हारी गाड़ी है, चलो उसी पर चलें।" गाड़ी से बाहर आये। भीड़ के सामने गाड़ी सड़क पर रुकी। पं० जवाहरलालजी उछल कर गाड़ी के ऊपर बैठ गये जिससे सभी उन्हें देख सकें। गाड़ी की छत चिकनी-चिकनी फिसले जाते थे। मैं अपने हाथों का टेक लगाये था और वे मेरे हाथों को पकड़-पकड़ अपने सन्तुलन को कायम रख रहे थे, और बाल्मीकि भाई-बहनों से घुल-मिलकर बातें करते रहे, अजीब नैसर्गिक दृश्य था, कौन स्वप्न में

यह खयाल कर सकता था—विश्व के एक महान् देश का महान् प्रधान-मंत्री उस देश के सबसे नीचे पड़े हुए दलित-शोषित और लांछित समुदाय के कुछ थोड़े से अशक्त व्यक्तियों के आँसू पोंछने के लिए इतना··· । मैं सोच रहा था और रोमांचित हो रहा था ।

लगभग १०। बजे उन्होंने उन लोगों से विदा ली। उत्फुल्ल-मुद्रा में मुझसे कहा—जैसे कहने की कोई जरूरत थी—चलो मुझे पहुँचा तो दो। गाड़ी कोठी में जाकर पोर्टिको में रुकी। पं० जी उतरे, मैं भी उतरा। "तुम क्यों उतर रहे हो, जाओ" उन्होंने कहा। "बदतमीजी कैसे करूँ।" उन्होंने पीठ पर चपत जमाते हुए कहा, अच्छा जाओ। मैंने प्रणाम किया और चला आया। सोचता रहा रास्ते भर कि इस महामानव के तेज-पुंज से विषमता और अभाव भस्मसात हो और इसकी ज्योति से मानवता आलोकित हो, विश्व-आलोकित हो।

पिछले सत्तरह वर्षों तक उनके साथ काम करने का सौभाग्य मिला, नजदीक से उन्हें देखने का सौभाग्य रहा। कितनी ऐसी घटनाएँ हैं जो आज भी मुझे अनुप्राणित करती रहती हैं, प्रोत्साहित करती रहती हैं देश और विश्व के कल्याण के लिए अपने-आपको खपा देने के लिए—और करती रहेंगी, न मालूम कितने लोगों को।

श्री शैलेन्द्र कुमार पाठक ने "युग-पुरुष नेहरू के संकल्प" लिखकर काम किया है। जिन सात विषयों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है, कहना अत्युक्ति न होगा कि वे सम्यक समाज की रचना के सात अनिवार्य सोपान हैं।

लोग इसे पढ़ें और भारतीय गणतन्त्र को जनतांत्रिक प्रणाली से एक उपयोगी दृढ़ बना कर संघर्ष रहित विश्व-संघ की स्थापना की ओर अग्रसर हो सकें तो जवाहरलाल की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि होगी और होगा लेखक का श्रम सार्थक।

रायसीना रोड, —**जगजीवनराम**

नयी दिल्ली।

इसे भी पढ़िये

"जवाहरलाल का अर्थ है—प्रत्यक्ष ऋतुराज ! चिर यौवन और आनंद का पुतला।"

यह शब्द विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने आज से ३६ वर्ष पहले कहे थे। जवाहरलाल ने अपने जीवन में इन शब्दों को अक्षरशः सिद्ध किया। जब तक वह जीवित रहे, एक शानदार व्यक्ति की तरह उन्होंने शानदार जिन्दगी बिताई। ऐसी जिन्दगी जिस पर लोगों को रश्क हुआ, ईर्ष्या हुई। पर किसी के कितने भी मत-भेद क्यों न हों, यह तो उसे कहना ही पड़ेगा कि ऐसे पुरुष कम जन्म लेते हैं। वह सदैव भारतीय जनता के आकर्षण के केन्द्र रहे। इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उनका आकर्षण उतरने लगा था, लेकिन फिर भी, किसी भी राजनेता के स्वर्गवास पर संसार में इतने आँसू कभी नहीं बहे, जितनी आँखें नेहरू ने गीली कीं।

मनुष्य के जीवन की सार्थकता कर्म में है और कर्म की सार्थकता उसकी परिणति में है। जीवन तो सभी जीते हैं लेकिन किस रूप में जिया जाय, यह नेहरू ने अपने जीवन को सार्थकता के साँचे में ढालकर दिखाया। उन्होंने बताया कि वैसे तो हरएक ही जीता है, मगर सच्चा और सार्थक जीवन वह है, जो सबका जीवन जिये और सबके लिए जिये, यह जीवन नेहरू ने जिया।

नेहरू विश्वमानव थे। उन्हें कभी समाज और देश की संकुचित सीमाओं में बाँधकर उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उन्होंने उन लोगों के साथ सहयोग किया जो मानव-समाज को विभाजित करने वाली शक्तियों का विरोध करते हैं। जिनका विश्वास शस्त्रीकरण में नहीं है किन्तु सहअस्तित्व तथा विचार-विमर्श के द्वारा ही संसार के कल्याण की कामना करते हैं। वह भारत की शांति तथा समृद्धि को विश्वशांति तथा विश्व समृद्धि का प्रतीक मानते थे।

नेहरू के निधन से एक युग की समाप्ति हो गई है। आज राष्ट्र दूसरे युग के द्वार को खटखटा रहा है। पर वर्तमान नेतृत्व में ऐसा कोई नहीं है, जो युग को अपने साथ लेकर चल सके। न किसी में यह क्षमता है, न प्रतिभा। लगता है कि अनुयायी रह गये हैं। भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद संघ का युग प्रारम्भ हुआ था, वैसी ही स्थिति इस समय भी बनी।

सत्ता के संघर्षों से व्यक्ति-नेतृत्व से सामूहिक नेतृत्व बना। नेहरू के शासनकाल में चाहे जन-मानस कितना ही क्षुब्ध और आंदोलित रहा हो, लेकिन उसे नेहरू की शक्ति, साहस और व्यक्तित्व पर सन्तोष था, भरोसा था। आज जन-मानस अपने को असहाय अनुभव कर रहा है।

आज ऐसा कोई नेता नहीं है, जन-मानस जिसमें अपनी समस्याओं का हल, विश्वास, संतोष पा सके। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि नेहरू ने अपने पीछे सद्भावना की जो विशाल सम्पत्ति छोड़ी है, उसका सदुपयोग हो।

शासनतंत्र इस प्रकार चलाया जाय कि जिसमें सबको न्याय मिले। यदि नया नेतृत्व विवेक, संयम, साहस, दृढ़ता और ईमानदारी से काम न ले सका, उसने व्यक्तिगत स्वार्थों को राष्ट्रहित से ऊपर माना और स्वार्थपरता तथा गुटबंदी उभरी, तो निश्चय मानिये, आज नेतृत्व जिस ज्वालामुखी पर बैठा है, विस्फोट में देर नहीं लगेगी।

अब देशवासी किसी भी कीमत पर अन्याय, अनाचार और भ्रष्टाचार को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे, नेहरू की गलतियाँ और भयानक गलतियाँ भी उनके विराट और लोकप्रिय व्यक्तित्व के कारण नजर-अन्दाज कर दी जाती थीं—पर अब ऐसा कोई व्यक्तित्व नहीं है।

आज की राजनीति को नीति-प्रधान होना पड़ेगा, धर्मनीति का आश्रय उसको लेना ही पड़ेगा। हमें इतिहास से शिक्षा लेनी होगी। जब भी शासन ने विवेक का अनादर किया, सर्वनाश की आग ने उसे निगल लिया।

यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता कि राष्ट्र की इस अटूट सम्पदा के स्वामी कुछ व्यक्ति बन जायें—राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के लिए है, राष्ट्र की अर्चा के लिए है, उसके निर्माण और उसकी प्रगति के लिए है।

इस पवित्र निधि को भोगने की इजाजत कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, नहीं दी जा सकती।

स्थिति विषम है—संकट की घटाएं घिरी हैं, फिर भी कर्त्तव्य से च्युत होकर सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए कोई भ्रष्टाचार उन्मूलन का नारा लगा रहा है, कोई अपने गुट को शक्तिशाली बना रहा है।

इन सबको यह याद रखना चाहिए कि असली शक्ति जनता है। जनता सिंहासन पर भी बिठा सकती है और विस्मृति की काली भयानक गहराइयों में भी फेंक सकती है। अब देश अशक्तता को सहन नहीं करेगा। देश को परोन्मुखता की नहीं (जो अशक्ति की जन्मदात्री है) अजेयशक्ति की प्रतीक आत्म-निर्भरता की जरूरत है। सत्तारूढ़ दल को चाहिए कि समय के तकाजे को, युग की माँग को, सदैव अपने सामने रखे।

नेहरू के न रहने से एक विराट रिक्तता राष्ट्र के जीवन में आ गई है, उसकी पूर्ति तभी हो सकती है, जब हम अपने को पूरी तरह राष्ट्र के प्राणों में घुला-मिला दें। क्योंकि इस समय नेहरू जहाँ देश को निर्माण की कई सीढ़ियाँ चढ़ा गये हैं, वहाँ अपने पीछे शिथिल शासन, शिथिल कांग्रेस और शिथिल देश छोड़ गये हैं।

और आज देश के सामने अनेकानेक समस्याएं मुँह खोले खड़ी हैं। सबसे कष्टकर है खाद्य की समस्या। इस सुजला-सुफला-शस्य-श्यामला भूमि में लोग भूखों मरें, इसे हम राष्ट्रीय दुर्बलता का निन्दनीय लज्जा-जनक प्रदर्शन के अलावा और क्या कह सकते हैं।

प्रशासक और जनता दोनों को ही अपनी जिम्मेदारी अनुभव करनी चाहिए। जनता लोकतंत्र की सजग प्रहरी होती है।

आज प्रश्न किसी व्यक्तिविशेष का नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र का है, जरा-सी भी चूक हमें कहीं का कहीं ले जाकर पटक सकती है।

रेत से भवन का निर्माण नहीं होता, उसके लिए तेज आँच में पकी ईंटें ही लगती हैं। इसी तरह राष्ट्र भी उनके हाथों में सुरक्षित रहता है, जिन्होंने त्याग-तपस्या की आग में तपाकर अपने को कुंदन बनाया हो।

आज देश में चारों ओर निराशा का वातावरण है—हमें इस घने अंधकार को चीरना है।

नेहरू के बाद देश को शास्त्री के रूप में एक कर्मठ, उत्साही, लगन-शील और परिश्रमी प्रधान मंत्री मिला है। पर राष्ट्र-रथ को खींचने के लिए इसके सिवाय और भी गुणों की आवश्यकता होती है। शास्त्रीजी पूर्ण नहीं हैं, उनमें भी मानवीय दुर्बलताएं हैं। प्रशासन के साथ-साथ जनता को भी अपने दायित्वों का पूरा-पूरा निर्वाह करना है।

हमें लोकमान्य तिलक के यह शब्द याद रखने चाहिए :

"मेरे राष्ट्र की आत्मा अजेयात्मा है, यदि कभी वह झुकती है, तो भक्ति और प्रेम के सम्मुख। आज तक का इतिहास इस बात का प्रबल प्रमाण है कि अशुभ और अमंगल के युद्ध में हमारे पूर्वज काल के सामने भी लड़े हैं—कभी भी असत्य, अन्याय और असम्भव के सामने हम अपना गौरवमण्डित उन्नत मस्तक झुकाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।"

हमें चाहिए कि हम अपनी इस जिम्मेदारी को निभाएँ कि नेहरू द्वारा जो कार्य अधूरा छोड़ा गया है, उसे पूरा करेंगे। हम उन हजारों शहीदों के सपनों को चरितार्थ करेंगे, जिन्होंने पवित्र उद्देश्यों के लिए अपने जीवन की आहुति दी।

हम मातृभूमि के अमुक्त अंगों को मुक्त करेंगे तथा देश की जनता अभावों के जिस नागपाश में जकड़ी हुई है, आक्रांत है, उसे सुखी बनाएँगे।

इस पुस्तिका के लिए जिन आत्मीयों, सर्वश्री निरंजनदेव शर्मा, रमेशचन्द शर्मा, शिवचरण गुप्त एम० पी०, सतीश खुराना, बी० के० गौड़, टी० एन० कौल, वी० एस० गुप्ता, चन्द्रनारायण अग्रवाल, एस० के० चड्डा, जवाहरलाल गुप्त आदि से सुझाव और सहयोग मिला है, शाब्दिक आभार प्रदर्शित करके, उसके मोल को मैं कम नहीं करना चाहता।

अन्त में मुझे देश के प्रशासकों से अत्यन्त विनम्रता के साथ यही निवेदन करना है कि शाब्दिक गोलों से न भ्रष्टाचार मिटेगा न राष्ट्र का निर्माण ही होगा। इसके लिए आपको जन-मानस में उतरना होगा और तभी आप जनगण के सहयोग से नेहरू के संकल्पों को पूरा कर सकेंगे।

७ थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग
कनाट सरकस, नयी दिल्ली–१

—शैलेन्द्रकुमार पाठक
अध्यक्ष : हिन्दी पत्रकार संघ

समर्पण

उन नौजवानों के वज्र करों में

जो मातृभूमि के सम्मान के लिए रक्त की

अन्तिम बूंद तक देने में

संकोच न करेंगे।

जीवन-दर्शन

जवाहरलाल नेहरू नाम लेते ही देश का ५० वर्षों का इतिहास, जिसके एक-एक पृष्ठ पर नेहरू की छाप है, आँखों के सामने झूमने लगता है।

शताब्दियों में ही ऐसे पुरुष कुछ विशेष प्रतिभाएँ लेकर उत्पन्न होते हैं, इतिहास जिनके पीछे चलता है। जिनका हर कदम इतिहास का निर्माण करता है, उसे स्वर देता है, वाणी देता है, लय देता है, गति देता है।

पराधीनता के घने अंधकार में अनेक प्रकाशपुंज अवतरित हुए और कम या अधिक उन्होंने जवाहर के लिए मार्ग तैयार किया। स्वतन्त्रता के दीप को उन्होंने जलाया और उसे जवाहर के हाथ में थमा दिया।

जवाहरलाल नेहरू के जीवन की प्रमुख तिथियाँ इस प्रकार हैं।

१८८९ : १४ नवम्बर इलाहाबाद में जन्म : माता स्वरूपरानी, पिता मोतीलाल नेहरू।

१९०५ : शिक्षा के लिए इंगलैण्ड के हैरो स्कूल में प्रवेश।

१९०७ : केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश।

१९०९ : बर्लिन यात्रा।

१९१० : केम्ब्रिज से स्नातक।

१९१२ : बैरिस्टरी पास करके भारत आगमन।

१९१५ : इलाहाबाद की आम सभा में प्रथम सार्वजनिक भाषण।

१९१६ : दिल्ली में कमला से विवाह, काश्मीर भ्रमण, लखनऊ कांग्रेस में महात्मा गांधी से प्रथम भेंट।

१९१९ : गांधी के नेतृत्व में रौलट ऐक्ट का विरोध।

१९२० : दुखी किसानों के लिए उत्तर प्रदेश के देहातों का दौरा।

१९२१ : प्रथम बार गिरफ्तारी, ३ मार्च सन २२ तक जैल में।

१९२२ : युवराज एडवर्ड की भारत-यात्रा के समय फिर गिरफ्तारी।

१९२३ : अखिल भारतीय कांग्रेस के मंत्री निर्वाचित।
नाभा से निष्कासन की आज्ञा न मानने पर गिरफ्तारी।

१९२६-१९२७ : ब्रुसेल्स में कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य विरोधी सम्मेलन में गये।
इटली, स्विटज़रलैंड, इंगलैंड, बेल्जियम, जर्मन, रूस आदि देशों की यात्रा।

१०२८ : अखिल भारतीय, भारतीय समाजवादी युवक कांग्रेस में सभापति पद से भाषण; साइमन कमीशन विरोधी जलूस का नेतृत्त्व।

१९२९ : लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष, नागपुर राजनैतिक सम्मेलन के सभापति निर्वाचित, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के दसवें अधिवेशन में नागपुर में सभापति-पद से भाषण; पिता के पत्र पुत्री के नाम पुस्तक का प्रकाशन।

१९३० : नमक कानून तोड़ने पर कारावास; इलाहाबाद में किसान सम्मेलन में भाग लेने पर गिरफ्तारी, २ वर्ष की कैद ६००) जुर्माना।

१९३१ : मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास, जेल से रिहाई, किसान आन्दोलन के सिलसिले में दो वर्ष की कैद।

१९३३ : माता स्वरूपरानी की गम्भीर बीमारी के एक कारण जेल से रिहा।

इलाहाबाद में राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तारी और दो वर्ष की कड़ी कैद; विश्व इतिहास की झलक पुस्तक का प्रकाशन।

१९३५ : अलमोड़ा जेल में मेरी कहानी पूरी की, कमला नेहरू की बीमारी के कारण रिहाई।

१९३६ : स्विटजरलैंड में कमला नेहरू का स्वर्गवास; पुनः कांग्रेस के प्रधान निर्वाचित।

१९३८ : मेरी कहानी का प्रकाशन, स्पेन की यात्रा और लोक-तन्त्री नेताओं से भेंट।

१९३९ : सिंहल तथा चीन की यात्रा।

१९४० : ३१ अक्टूबर को द्वितीय महायुद्ध के समय व्यक्तिगत सत्याग्रह में कारावास।

१९४१ : जेल से रिहा।

१९४२ : विश्व के अनेक नेताओं से भारत की स्वाधीनता के सम्बन्ध में विचार-विमर्श; ७ अगस्त को बम्बई कांग्रेस में भारत छोड़ो प्रस्ताव प्रस्तुत किया; ८ अगस्त को गिरफ्तारी; अहमदनगर के किले में कैद।

१९४५ : दो वर्ष १० मास के पश्चात् जेल से छूटे; क्रांति की पूरी जिम्मेदारी ली; जापान से एशिया में शान्ति बनाये रखने की विशेष अपील; आज़ाद हिंद फ़ौज के लिए कानूनी बचाव समिति का संगठन।

१९४६ : ६ जुलाई, चौथी बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित; मार्च में दक्षिण पूर्व एशिया का दौरा, २ सितम्बर गवर्नर जनरल की कार्यकारी-परिषद के उपाध्यक्ष; डिस्कवरी ऑफ-इण्डिया का प्रकाशन।

१९४७ : एशियाई देशों के सम्मेलन का आयोजन, १५ अगस्त को देश के प्रधान मन्त्री; वैदेशिक तथा वैज्ञानिक शोध

विभागों को सँभाला।

१९४८ : लियाकतअलीखाँ, सरदार पटेल के साथ उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों का दौरा; ३ फ़रवरी को राष्ट्रसंघ महासभा में भाषण; (१९५६ तथा ६१ में भी भाषण किये); भारत निर्मित प्रथम समुद्री जहाज जल ऊषा का विजगापट्टम के समुद्र में छोड़ा; उड़ीसा की नई राजधानी भुवनेश्वर का शिलान्यास, राष्ट्रीय प्रधान मंत्री सम्मेलन में भाग लिया; काश्मीर प्रश्न पर लंदन में लार्ड एटली तथा लियाकतअली से वार्ता।

१९४९ : नई दिल्ली में इण्डोनेशिया पर होने वाले १९ देशों के सम्मेलन का उद्घाटन; अमरीका की यात्रा।

१९५० : कनाडा की संसद में भाषण। भारत के सर्वोच्च न्यायालय का उद्घाटन; देश के गणतन्त्र घोषित होने पर नये मंत्रिमण्डल का गठन।

१९५१ : कोरिया के मामले में संयुक्तराष्ट्र को शीघ्रता न करने पर चेतावनी; काश्मीर पर हमला भारत पर हमला माना जायगा, पाकिस्तान को चेतावनी; अमरीका-ब्रिटेन की निंदा—उनकी काश्मीर नीति पर।

१९५२ : काश्मीर के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ से हटाने की माँग अमान्य।

१९५३ : सरकारी इण्डियन एयरवेज कारपोरेशन का उद्घाटन; एलिजाबेथ की राजगद्दी में लंदन में शामिल।

१९५४ : चीन के साथ पंचशील पर हस्ताक्षर; दिसम्बर में मलय, इंडोनेशिया, थाईदेश, बर्मा का दौरा।

१९५५ : रूस यात्रा (१९६१ में फिर रूस गये);
८ जुलाई, रोम में पोप से गोवा के सम्बन्ध में वार्तालाप;
१५ जुलाई भारत रत्न की उपाधि से सम्मानित।

१९५६ : चीन-यात्रा; जून-जौलाई में आयरलैंड, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, युगोस्लाविया की यात्रा ।
३१, अक्टूबर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के नाम विशेष संदेश; मिस्र में हमले के सम्बन्ध में कार्रवाई की माँग ।

१९५७ : नयी दिल्ली में यूनेस्को के १०वें वार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन ।
जून—सीरिया, डेनमार्क, फिनलैंड. नार्वे आदि की यात्रा; अक्टूबर—जापान यात्रा; ट्राम्बे में अणु-शक्ति रियेक्टर का उद्घाटन ।

१९५८ : नैपाल की दूसरी यात्रा; अणु-शक्ति कमीशन की स्थापनाकी घोषणा; काश्मीर पर डा० फ्रेंक ग्राहम का प्रस्ताव अमान्य ।

१९५९ : आइजनहावर के साथ संयुक्त वक्तव्य; राष्ट्रीय एकता के लिए सम्मेलन का आयोजन; घाना के प्रधानमन्त्री एन्क्रूमा से दिल्ली में वार्ता; दलाईलामा के मत से सहमति; ईरान यात्रा ।

१९६० : राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व; चीनी प्रधानमन्त्री से भेंट का प्रस्ताव अमान्य; संयुक्त अरबगणराज्य, टर्की, लेबनान तथा सीरिया की यात्रा ।

१९६१ : भूटान के राजा से वार्ता; भारत में निर्मित प्रथम बिजली के इंजन का चितरंजन में उद्घाटन ।

१९६२ : प्रथम एशिया इतिहास कांफ्रेंस का उद्घाटन; भाखड़ा बिजलीघर का उद्घाटन; चीन के आक्रमण से आघात; रूस के राष्ट्रपति से वार्ता; नूनमती तेल शोधक कारखाने का उद्घाटन; पेरिस में यूनेस्को में भाषण; फ्रांस, इंगलैंड, अरब की यात्रा; राष्ट्मण्डलीय

सम्मेलन में शामिल।

१९६३ : रिहंद बाँध का उद्घाटन; ग्रामीण स्वयंसेवक दल का उद्घाटन; भाखड़ा बाँध राष्ट्र को समर्पित।

१९६४ : भुवनेश्वर कांग्रेस में अस्वस्थ; शेख अब्दुल्ला की रिहाई; २७ मई को निर्वाण।

: १ :

स्वतन्त्रता

"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हैं।"

लोकमान्य तिलक के कण्ठ से निकला यह मंत्र भारतीय जनता के कोटि-कोटि कण्ठों का गान बन गया। देश के हर कोने में यह गूंजने लगा। देश की सीमाओं को पार करता हुआ दूर-सुदूर विदेशों की पीड़ित, शोषित और पद-दलित जनता ने इस महामन्त्र को अपनाया। कांग्रेस के स्वराज्य की कल्पना उस समय तक स्पष्ट नहीं थी और वह औपनिवेशिक स्वराज्य के आस-पास ही चक्कर काट रही थी।

स्वतन्त्रता की भावना भारतीय जन-मानस में तीव्र से तीव्रतर होती गई। जन-मानस आन्दोलित हो उठा। लाहौर कांग्रेस में सन् २९ में युग पुरुष नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय की ऐतिहासिक घोषणा की।

स्वाधीनता की प्रतिज्ञा

२६ जनवरी सन् १९३० को पूर्ण स्वाधीनता का प्रतिज्ञा-पत्र पूरे देश ने दुहराया। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना यह जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपनी मेहनत का फल खुद भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएँ मिलें, जिससे हमें भी विकास का पूरा-पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि अगर कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती

है और प्रजा को सताती है, तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी हक है। हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार ने हिन्दुस्तानियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि उसका आधार ही गरीबों के रक्त-शोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दुस्तान का नाश कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आजादी प्राप्त कर लेना चाहिए।"

मानवता की आत्मा

पण्डित नेहरू ने स्वतन्त्रता को मानवता की आत्मा बताया है—

"—प्राचीन चीन देश की बात है। एक लुहार भाले और ढालें बनाया करता था। बड़ी मज़बूत ढालें वह बनाता था।

वह कहता था—'दुनिया का कोई भी मज़बूत भाला मेरी ढालों को नहीं छेद सकता।'

भाला भी वह ऐसे ही मज़बूत बनाता था। बड़ा गर्व था उसे अपने तेज भालों पर।

कहता था—'ऐसी कोई ढाल नहीं, जिसे मेरे भाले न छेद सकते हों।'

एक दिन एक आदमी आया और उस लुहार से कहने लगा—'अगर तुम्हारे ही भालों से कोई तुम्हारी ढालों को छेदना चाहे, तो क्या होगा?'

यही हालत हमारी आज की इस दुनिया की है, उसके सोचने के तरीके की है। आदमी अक्सर अपने से ही जूझना चाहता है, जूझता है। वह एक बात को जितना सच मानने लगता है, उसके विरोध की बात को भी उतना ही सच कहता है। जैसे सच्चाई एक

नहीं, दो हों या दो से ज़्यादा सैकड़ों-हजारों हों। हमारे मुल्क में यह सबसे ज़्यादा है।

हम दूसरों की हर सच्चाई को स्वीकार कर लेते हैं और उन सैकड़ों सच्चाइयों में उलझे रहते हैं, बहस करते रहते हैं, अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं। धीरे-धीरे यह आदत हमें मीठी भी लगने लगती है। मगर यह है बहुत बुरी। हमारे पास अपनी सत्यता होनी चाहिए। अपना स्वतन्त्र विचार होना चाहिए और वही कसौटी होनी चाहिए, दूसरी सत्यता को परखने की।

परन्तु हम आज़ादी से डरते हैं, कदम उठाने से खौफ़ खाते हैं। यह गलत है—यदि हमें सही अर्थों में इंसान रहना है, तो हमारी अपनी सच्चाई होनी चाहिए। मैं ऐसी स्वतन्त्रता को मानवता की आत्मा मानता हूँ।"

भारत की आज़ादी का दृष्टिकोण संकुचित नहीं था। न हम केवल अपने लिए आज़ादी चाहते थे। हमारी आज़ादी का मतलब था, दुनिया के उस हर देश की स्वतन्त्रता; जिसे साम्राज्यवाद के पैरों तले रौंदा जा रहा है। भारतीय ऋषि-मुनियों, मनीषियों और नेताओं ने सदैव विश्व-कल्याण को ध्यान में रखा है। हमारी संस्कृति इसी भित्ति पर खड़ी है। भारत का दृष्टिकोण कभी संकुचित नहीं रहा, अपने तक सीमित नहीं रहा। हमारा तो उद्देश्य सर्वभूत हिताय मानव मात्र के कल्याण के लिए रहा है।

संसार का कल्याण

एक बार गांधीजी से पूछा गया—आप हिन्दुस्तान की आजादी क्यों चाहते हैं, तो उत्तर था; उस महामानव गांधी का, (जो केवल भारतीय संस्कृति का उपासक ही दे सकता है।)

For the good of the whole world.

सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए।

भारतीय मनीषियों का हर संकल्प, हर कार्य, हर प्रयोग संसार के कल्याण की भावना से अनुप्राणित होता है। हमारे सामने केवल अपने देश के कल्याण का ही प्रश्न नहीं होता, बल्कि मानव-जाति के हित का प्रश्न होता है।

विश्व के अन्य देशों की तरह भारतीय भौतिक साधनों को ही सुख व शान्ति का प्रतीक नहीं मानते। रोटी के अलावा भी मनुष्य को एक चीज़ चाहिए और वह है स्नेह! आज की भौतिकवादी सभ्यता में मनुष्य इस प्रकार अपने को लय कर चुका है कि उसे चारों ओर स्नेह और स्वतन्त्रता कहीं दिखाई नहीं देती। हर कदम पर उसे भय, शंका, अविश्वास का आभास होता है। उसे ऐसा लगता है कि वह पराधीन है। कहीं-न-कहीं ऐसी कड़ियाँ या बन्धन जरूर हैं, जो उसे दृश्य या अदृश्य रूप में बाँधे हुए हैं और छुटकारा पाने का प्रयत्न करने के बाद भी वह उसमें उलझता ही जाता है।

गांधीजी की कल्पना

गांधीजी ने जिस आजादी की कल्पना की थी, वह केवल राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी। वे एक इस प्रकार का समाज बनाना चाहते थे, जो सत्य और अहिंसा पर आधारित हो। इसलिए अभी उनका काम समाप्त नहीं हुआ। उनके सपनों का भारत अभी बनना बाकी है और यह काम पहले से बहुत ज़्यादा कठिन है। क्योंकि जहाँ तक राजनैतिक स्वतन्त्रता का प्रश्न था। हर विचार, हर वर्ग के आदमी का उसमें कुछ-न-कुछ सहयोग ज़रूर था। क्योंकि हमारा संघर्ष एक विदेशी शक्ति के साथ था और उससे हर स्वाभिमानी और स्वतन्त्र विचार रखने वाला आदमी मुक्ति पाना चाहता था। इसलिए इस संग्राम में हर वर्ग का सहयोग मिलना ज़रूरी तो था ही और वह मिला भी।

पर जहां तक आर्थिक स्वतन्त्रता तथा दूसरे प्रकार के बंधनों

से मुक्ति का प्रश्न है, वहाँ बहुत कठिनाई सामने आती है, क्योंकि अब संघर्ष अपने ही देशवासियों से होगा, क्योंकि कोई भी आसानी से अपने अधिकार तथा अपनी सम्पत्ति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होगा।

मनुष्य अपनी सम्पत्ति को अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान समझता है, क्योंकि अपनी मृत्यु के बाद उसे अपना वंश चलाने की इच्छा रहती है। इसलिए जन-कल्याणकारी समाज बनाने के लिए जिसमें आर्थिक रूप से कोई किसी के ऊपर निर्भर न रहे, आसानी से होने वाला नहीं है। क्योंकि सम्पति से सम्बन्धित मूल्यों में जब तक आमूल-चूल परिवर्तन न किए जाएँ, तब तक इसकी स्थापना सम्भव नहीं होगी।

इसका सीधा-सादा मतलब यह है कि अमीरों को गरीबी में हिस्सा बँटाने के लिए तैयार रहना चाहिए। समाज में ऐसे मूल्यों की स्थापना की जाय, जिससे धनी वर्ग उन सब उपलब्ध साधनों को स्वेच्छा से त्यागने के लिए तत्पर हो जाय, जो जन-साधारण को उपलब्ध न हो सकते हैं, अथवा जो किसी के श्रम का अनुचित लाभ उठाते हुए प्राप्त किये गए हों। अपने लिए कोई व्यक्ति पैदा न करें, अपने आप ही सारी सम्पत्ति का मालिक भी न बने, बल्कि वह सबके लिए पैदा करे और उसका सामूहिक उपयोग हो। आर्थिक आजादी के इस सिद्धान्त को पण्डित नेहरू ने माना और उन्होंने जोर-शोर से इसके लिए कार्य किया।

नेहरू का यह दृढ़ विश्वास था कि बिना आर्थिक आजादी के राजनैतिक आजादी का कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य जब तक पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक स्वतन्त्रता क्या है।

शान्ति और साम्राज्य

पण्डित नेहरू की दृष्टि में भारत की आजादी का मतलब भारत

से विदेशी सत्ता का हट जाना ही नहीं था और न केवल हमें अपना ही लाभ देखना था। उनका दृष्टिकोण व्यापक था। उनकी दृष्टि में भारत की आजादी का मतलब संसार के पराधीन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता था।

उन्होंने १६ जुलाई सन् १९३८ में शान्ति और साम्राज्य के प्रश्न पर इण्डिया लीग और लंदन फैडरेशन आव पीस कौंसिल्स की ओर से उस परिषद् में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए कहा था—

"मेरा ख्याल है कि आप लोग इस बात को समझ रहे होंगे कि अगर हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जाए, तो वह दुनिया-भर में साम्राज्य की धारणा में भारी फर्क डाल देगा और उससे सब-के-सब पराधीन लोगों को लाभ पहुँचेगा।"

सितम्बर १९३९ में उन्होंने फिर कहा :

"हिन्दुस्तान में भी सन् १४ में हम जैसे थे, उससे अब बहुत बदल चुके हैं। हममें ताकत आ गई है और आ गई है राजनीतिक सजगता और मिलकर काम करने की ताकत। अपनी बहुत-सी मुश्किलों और समस्याओं के बावजूद आज हमारा राष्ट्र कमज़ोर नहीं है। हम जो कहते हैं, उसकी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों तक में कुछ हद तक कीमत है। अगर हम आजाद होते, तो शायद इस लड़ाई को रोकने तक में कामयाब हो गए होते। आजाद हिन्दुस्तान बड़े-बड़े साधनों के कारण दुनिया और मानव जाति की बड़ी भारी सेवा कर सकता है। हिन्दुस्तान हमेशा दुनिया को बदलने वाला मुल्क होगा। तकदीर ने हमें बड़ी चीजों के लिए बनाया है। जब हम गिरते हैं, तो नीचे गिर जाते हैं, जब हम ऊपर उठते हैं तो लाजिमो तौर से दुनिया के नाटक में भाग लेते हैं।"

मार्ग-दर्शक भारत

पण्डित नेहरू का दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। भारत [illegible]

विशाल और शानदार देश विश्व राजनीति में मूकदर्शक बन कर नहीं रह सकता था। हिन्दुस्तान की आजादी के बाद ही एशिया और संसार के अनेक पराधीन देशों की जनता ने गुलामी की कड़ियों को तड़का दिया।

नेहरू ने सदैव सारी दुनिया में हो रहे शोषण, अन्याय को खतम करने के लिए अपनी शक्तियों का सदुपयोग किया।

उन्होंने सन् २८ में मद्रास कांग्रेस में कहा था :

"—इतिहास का यह फैसला है कि हमारे प्राचीन देश को अपनी आज़ादी के संघर्ष से और अपनी आज़ादी के बाद सभी देशों की संघर्षरत जनता का मार्गदर्शक बनना है, उस कोटिसंख्यक जनता का, जो अपनी उस युगों पुरानी नींद से जाग रही है, जिसे साम्राज्य-वाद ने अपने उत्पीड़न की अफीम खिलाकर उसे सुला दिया था।"

नेहरू की यह बातें उस समय लोगों की समझ में नहीं आईं, और न उसकी व्यापकता के सम्बन्ध में ही किसी ने सोचा। पर जब हिटलर के गणों ने राइरवस्टाग में आग लगा दी और उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वह सारी दुनिया को गुलाम बनाएंगे, तब संसार की समझ में यह आया कि नेहरू का दृष्टिकोण ठीक है। यह नेहरू का ही योगदान था कि उन्होंने यह बताया कि किसी भी देश की आज़ादी तभी सुरक्षित रह सकती है, जब कि फासिज्म के खतरों से हमेशा सजग रहे।

दूसरे महायुद्ध के समय भी जब अंग्रेज सरकार भारतीय जनता और नेताओं को आतंकित कर रही थी, नेहरू का दृष्टिकोण स्पष्ट था, उन्होंने कहा कि "अगर फासिस्टी ताकतें जीत गईं, तो वे सारे मूल्य समाप्त हो जायँगे, जिनके लिए मानवता ने अब तक संघर्ष किया है।"

फैसिज्म से नफरत

नेहरू ने कभी फैसिस्टों के दमन की परवाह नहीं की। संसार के दूसरे देशों की जनता की भावना का उन्होंने स्वयं खतरा उठाकर, उन देशों में जाकर समर्थन किया।

जब १६३६ में चीन में बम बरस रहे थे, नेहरू चीन में थे। कांग्रेस ने एक डाक्टरी मिशन भी डा० अटल के नेतृत्व में चीन भेजा था। जिसमें भारत के एक सपूत डा० कोटनीस ने मानवता की सेवा करते हुए शहादत का बाना धारण किया।

और जब स्पेनवासी प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए जूझ रहे थे—परिडत नेहरू स्पेन के रक्तरंजित युद्ध के मैदानों में थे।

उन्हीं के शब्दों में—"इस खूबसूरत शहर में हमने पाँच दिन बिताये, और पाँचों रात हवाई जहाजों से बमबारी हुई। इन पाँच दिनों में नयी-नयी घटनाएँ घटीं और तरह-तरह के अनुभव हुए। जिनकी याद हमेशा बनी रहेगी।"

कोरिया हो या कांगो, वियतनाम हो या स्वेज़ का प्रश्न। नेहरू ने सदैव वहाँ जनता की आजादी का समर्थन किया। उनके मन में गुस्से और नफ़रत की भावना सदैव उनके प्रति रही, जो किसी की स्वतन्त्रता को कुचलना चाहते हैं।

योगदान

नेहरू उपनिवेशवाद के कट्टर शत्रु थे। उनका यह अनुभव ठीक था कि एशियायी और अफ्रीकी कौमें तभी तरक्की कर सकती हैं और विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना सकती हैं, जबकि वह गुलामी की जंजीरों से मुक्त हो जाएँ। यही विश्वास था, जिसने उनकी दृष्टि को व्यापकता प्रदान की। उन्होंने प्रधानमन्त्री तथा परराष्ट्र मन्त्री की हैसियत से अफ्रीका और एशियायी देशों की जनता की आज़ादी के न्यायोचित उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी

पूरी ताकत से योगदान किया। नेहरू एक ऐसे महापुरुष थे, जिन्हें मानवता की मुक्ति का ध्येय अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय था। उन्होंने बराबर कैसी भी संकट की घड़ी क्यों न हो राष्ट्रों के बीच स्वतन्त्रता, समानता, शान्ति एवं सहयोग की मशाल को हमेशा मज़बूत हाथों में उठाये रखा।

नेहरू की यह उत्कट कामना थी कि देश की जनता सुखी एवं खुशहाल होकर अपनी आज़ादी को तो क़ायम रखे ही—संसार की आज़ादी के लिए भी शक्ति भर सहयोग करे।

उन्होंने हिन्दुस्तान की कहानी में लिखा है कि—"कोई भी देश अगर पूरी तौर से औद्योगीकरण में अपने पैरों पर खड़ा नहीं होगा और अपने साधनों का अधिकतम विकास नहीं करेगा, तो वह अन्तर्राष्ट्रीय परस्परालम्बन के ढाँचे के अन्दर भी राजनीतिक या आर्थिक रूप से आज़ाद नहीं हो सकता। वह जीवन के लगभग हर क्षेत्र में आधुनिक टेक्नालॉजी की मदद के बिना न तो उच्च जीवन-मान हासिल कर सकता है, न उसे कायम रख सकता है और न गरीबी का खात्मा कर सकता है।"

तानाशाह से न मिले

नेहरूजी चाहते थे कि कहीं भी किसी भी रूप में हमारा देश किसी पर किसी भी परिस्थिति में निर्भर न रहे, अपने पैरों पर खड़ा हो, तभी उसे पूर्ण स्वतन्त्र कहा जा सकेगा।

नेहरू ने हमेशा अपनी आवाज़ शोषितों के पक्ष में बुलन्द की। अबीसीनिया को पद-दलित करने तथा म्यूनिख समझौते के समय उन्होंने अपना विरोध प्रगट किया। नाजियों की ओर से दिया गया निमन्त्रण स्वतन्त्रता प्रेमी नेहरू ने ठुकरा दिया था। इसी प्रकार रोम में तानाशाह मुसोलिनी से भी मुलाकात करने से इनकार कर दिया था। यह सब घटनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि नेहरू के मन में

आज़ादी की कितनी तड़प थी और वे किसी भी कीमत पर उन लोगों से मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करते थे, जो आज़ादी के दुश्मन थे और जनता की भावनाओं को कुचलना चाहते थे।

आधारभूत ढाँचा

आज भारत जितना ही प्रगति और स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहा है, उतना ही निहित स्वार्थों में असंतोष भी व्याप्त होता जा रहा है। अनुशासन हीनता, विक्षोभ तथा असंतोष की समस्या गम्भीर हो गई है लेकिन यह इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि हमारा समाज, हमारी संस्कृति और हमारी स्वतन्त्रता की विचारधारा में गतिशीलता है। जब समाज पुरानी स्थिति से उठकर नयी स्थिति की ओर जाना चाहता है, तब परिबर्तन के इस दौर में समाज का आलोड़न-बिलोड़न अनिवार्य हो जाता है। ऐसे समय में कुछ अशांति तथा अव्यवस्था भी फैल जाती है। स्वतन्त्रता के संक्रमण काल में पुरातन और नवीन में संघर्ष होता है। पुराने लोग नये परिवर्तनों का विरोध करते हैं। यही अवसर होता है, जब नेता मार्ग-दर्शन करता है और समाज को एक नयी दिशा देता है।

स्वतन्त्रता के इस दौर में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे विचारों और आदर्शों का जो आधारभूत ढाँचा है, उसे किसी प्रकार की हानि न पहुँचे, वह यथापूर्व रहे। स्वतन्त्रता की बागडोर सदैव संयम के मज़बूत हाथों में रहना चाहिए।

स्वतन्त्रता का तात्पर्य

स्वतन्त्रता का तात्पर्य मज़बूती से है, मज़बूती विचारों, मन, शरीर, बुद्धि और सिद्धान्तों की होनी चाहिए। सामान्यतः मन, शरीर और आत्मा का संतुलित विकास ही शिक्षा और स्वतन्त्रता का ध्येय है।

सबसे प्रथम महत्व शारीरिक स्वास्थ्य को दिया गया है, इसके बाद मन और आत्मा का स्वास्थ्य एवं सन्तुलन आता है। शरीर और मन ही अगर स्वस्थ नहीं है तो न स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है, और न उसकी सुरक्षा की जा सकती है। स्वतन्त्रता का मूलाधार आत्मिक शान्ति, स्नेह, विकास और समानता है।

महान् और शालीन भारत

नेहरूजी आज़ादी को गहराई में जाकर देखते थे। उनकी कल्पना विराट् थी। सन् ३५ में मेरी कहानी में पण्डितजी ने पूरी तौर से गुलामी में जकड़े हुए हिन्दुस्तान की जो तस्वीर दी है, वह कितनी गरिमामयी है।

" —यह कितने असाधारण आश्चर्य की बात है कि कुछ विशेषज्ञों तथा दूसरे लोगों को छोड़कर अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान के बारे में बेखबर हैं। जबकि हकीकतें ही उनकी पहुँच के बाहर हैं, तब हिन्दुस्तान की आत्मा तो उनकी पहुँच के कितने परे होगी? उन्होंने हिन्दुस्तान के शरीर पर अधिकार कर तो लिया, पर वह अधिकार बलात्कार का था। वे न तो उसकी आत्मा को ही समझते हैं और न समझने की कोशिश ही करते हैं। उन्होंने कभी उसकी आँख से आँख नहीं मिलाई। वे मिलाते भी कैसे? क्योंकि उनकी तो आँखें फिरी हुईं थीं और उसकी शर्म व जिल्लत से झुकी हुई थी। सदियों के इतने सम्पर्क के बाद भी जब भी एक दूसरे के सामने आते हैं, तो अब भी अजनबी-से बने हुए हैं और दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति अरुचि के भाव भरे हुए हैं।

"घोर अधःपतन और दरिद्रता के होते हुए भी हिन्दुस्तान में काफी शालीनता और महानता है और हालांकि वह पुरानी परम्परा और मौजूदा मुसीबतों से काफी दबा हुआ है, पर अन्दर से निकलती हुई सौन्दर्य-कांति उसके शरीर से झाँकती है। उसके अणु-अरमाणु

में अद्‌भुत विचारों, स्वच्छंद कल्पनाओं और उत्कृष्ट मनोभावों की झलक दिखाई देती है। उसके जीर्ण-शीर्ण शरीर में अब भी आत्मा की भव्यता झलकती है। अपनी इस लम्बी यात्रा में वह कई युगों से होकर गुज़रा है और रास्ते में उसने बहुत ज्ञान और अनुभव संचित किया है। दूसरे देशवासियों से लेन-देन किया है। अपने साहसिक विचारों से उसने स्वर्ग और ईश्वर तक पहुँचने की हिम्मत की है। उसने रहस्य खोलकर प्रकट किये हैं और उसे नरककुण्ड में गिरने का भी कटु अनुभव हुआ है। दुखदाई अंधविश्वासों और पतनकारी रस्म-रिवाजों के बावजूद, जो कि उसमें घुस आये हैं और जिन्होंने उसे नीचे गिरा दिया है, उसने उस आदर्श को अपने हृदय से कभी नहीं भुलाया, जो उसकी कुछ ज्ञानी सन्तानों ने इतिहास के उषाकाल में उसके लिए उपनिषदों में संचित कर दिया था। उसके ऋषियों की कुशाग्रबुद्धि सदा खोज में लीन रहती थी, नवीनता को पाने की कोशिश करती थी और सत्य की शोध में व्याकुल रहती थी। वह जड़-सूत्रों को पकड़कर नहीं बैठी रही और न लुप्तप्राय: विधि-विधानों, ध्येय वचनों और निरर्थक कर्म-काण्डों में ही डूबी रही। न तो उन्होंने इस लोक में खुद अपने लिए कष्टों से छुटकारा चाहा, न उस लोक में स्वर्ग की इच्छा की। बल्कि उन्होंने ज्ञान और प्रकाश माँगा। 'मुझे असत् से सत् की ओर ले जा; मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जा, मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले जा।' अपनी सबसे प्रसिद्ध प्रार्थना—गायत्री मंत्र—में जिसका लाखों लोग आज भी जप करते हैं, ज्ञान और प्रकाश के लिए प्रार्थना की गई है।"

इससे यह स्पष्ट है कि भारतवासियों ने कभी अपने लिए कुछ नहीं चाहा। किसी भी प्रकार के कष्ट में क्यों न रहें, उनका ध्यान हमेशा संसार के कल्याण के लिए ही रहा। हमेशा यही सोचा कि सम्पूर्ण मानवता को स्वतन्त्रता मिले, सुख-शान्ति मिले।

नेहरू के हृदय में स्वतन्त्रता की प्रचण्ड आग जलती रहती थी।

वह मानवमात्र को पूर्ण स्वतन्त्र देखना चाहते थे।

भारत में जितनी स्वतन्त्रता है, लिखने की, बोलने की, धर्म की—उतनी किसी नव-विकसित प्रजातन्त्रीय देश में मुश्किल से ही मिलेगी।

नेहरू प्रैस की स्वतन्त्रता के पक्षपाती, समर्थक थे। कम नहीं लिखा गया, नेहरू के विरोध में।

पादरी प्रवचन

सीरिया के पादरी इगनेशियस याकूब (तृतीय) जब भारत की यात्रा समाप्त कर दमिश्क पहुँचे, तब उन्होंने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा, कि—"भारत धर्म निरपेक्ष राज्य है। वहाँ सभी धर्मावलम्बियों के प्रति समानता का व्यवहार होता है। हरएक को अपने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक विचारों के अनुसार कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता है। भारतीय संविधान ने प्रत्येक नागरिक को धर्म-पालन और प्रचार का पूरा अधिकार दिया है। भारत में किसी भी प्रकार किसी के सामाजिक, धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। स्वतन्त्रता के सबसे बड़े हामी भारत को देखकर मैं प्रभावित हुआ।"

भारत में नेहरू के नेतृत्व में यह एक चमत्कार ही था कि सदियों से गुलाम, जर्जर और टूटे हुए देश को कुछ ही वर्षों में इतना ऊँचा ले जाना कि संसार में उसकी बात की कीमत हो। पग-पग पर हमारी स्वाधीनता के लिए खतरा था। पर भारतीय जनता की एकता ने स्वतन्त्रता की नींव को मज़बूत ही किया।

आज भी खतरे कम नहीं हुए हैं।

स्वतंत्रता की मशाल

स्वतन्त्रता की मशाल थामने के लिए मजबूत हाथों की ज़रूरत...

होती है। हजारों क्रांतिकारियों के बलिदान तथा भारतीय जनता की त्याग-तपस्या से हमने जिस आजादी को प्राप्त किया है। हमें उसे मजबूत बनाना है। विश्व रंगमंच पर भारत की सदैव प्रमुख भूमिका रही है और रहेगी।

हर कीमत पर हम अपनी आजादी को सुरक्षित रखेंगे और हमारा सहयोग विश्व की पराधीन जातियों की स्वतन्त्रता के लिए रहेगा।

हमें क्या करना है

राजनीतिक दृष्टि से आज़ाद होने के बाद भी भूख, बेरोज-गारी अभी समाप्त नहीं हुई है, वह बढ़ती जा रही है, और जब तक इसका हल निकल नहीं आता, तब तक हमारी स्वतन्त्रता बहुत अधिक महत्व नहीं रखती है। संसार के ऐसे अनेकों देश हैं, जो राजनैतिक तौर से आज़ाद हो चुके हैं, लेकिन उनका अर्थतंत्र अब भी दूसरे बड़े देशों के द्वारा संचालित होता है। रूस, अमेरिका, इंगलैंड आदि देश ऐसे जरूर हैं, जो स्वावलम्बी और समृद्ध हैं। हमारे देश की स्थिति अभी ऐसी है कि आर्थिक दृष्टि से उसे हीन ही कहा जायगा।

पिछले सत्रह वर्षों से पण्डित नेहरू देश की आर्थिक विपन्नता को समाप्त करने के लिए घोर प्रयत्न कर रहे थे। अगर हम यह कहें कि हमारी आज़ादी का अभी एक चौथाई भाग भी पूरा नहीं हुआ है, तो अनुचित न होगा। यह तभी पूर्ण होगा, जब हमारा आर्थिक विकास पूर्ण हो।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि हमारा यह आर्थिक विकास किस ढंग का होना चाहिए। क्या इसे कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में सौंप दिया जाय। पण्डितजी इसके खिलाफ थे, वह पब्लिक सेक्टर के हामी थे। वह यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि अमीर और अमीर होता जाय, गरीब और गरीब। वह चाहते थे कि जन-

साधारण आर्थिक दृष्टि से ऊँचा उठे। इस प्रकार से आर्थिक विकास हो, जिससे पूरे समाज का लाभ हो। यह आर्थिक विषमता ही स्वतन्त्रता की राह का रोड़ा है, क्योंकि आज जनसाधारण यह महसूस करता है कि यह आजादी केवल कुछ अमीरों की कोठियों में कैद है और हमारी स्थिति पहले से भी खराब हो गई है।

स्वतन्त्रता की रक्षा

स्वतन्त्रता की रक्षा किस प्रकार होती है, इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय का उद्बोधन माननीय है :

"—अपने देशवासियों से बार-बार यह कहना चाहता हूँ कि किसी भी जाति या राष्ट्र का निर्माण सपनों से नहीं होता, कोरे शब्दों से नहीं होता, बल्कि लोहू और लौह से होता है। हमारे शरीर में तेज बहने वाली लोहू की धारा हो और उस लोहू की धारा में बलि की लालसा हो। वैसे ही हमारे बदन लोहे के हों और उसी तरह लोहे जैसे हमारी इच्छा-शक्ति। इस योग्यता के साथ अगर लौहदण्ड भी हमारे हाथ में हो, तो एक राष्ट्र क्या सारी पृथ्वी को हम भय-मुक्त कर सकते हैं।"

जब चीन ने पंचशील के साथ विश्वासघात किया। भारत की हजारों साल पुरानी दोस्ती की पीठ में छुरा मारा, तो पण्डितजी का मन बहुत दुखी हुआ। उस समय उन्होंने देश की आज़ादी की रक्षा के लिए सर्वस्व निछावर करने का आवाहन किया :

"—देश के सामने आज अनेक गम्भीर समस्याएँ उपस्थित हैं। इनके हल के लिए हमें अपने-आपको मज़बूत बनाना होगा। देश इस समय संकटकाल से गुजर रहा है। इन संकटों का सामना करने के लिए दृढ़ शक्ति की जरूरत है। अगर हम कमज़ोर रहे तो चीनी हमले का या और किसी हमले का मुक़ाबला न कर सकेंगे।

चीन ने जब भारत पर हमला किया था, तो देश-भर में एक

नयी चेतना जागृत हो गई थी और सारा राष्ट्र आक्रमण का मुका-बला करने को तैयार था। लेकिन धीरे-धीरे यह भावना गायब होती जा रही है और आपसी झगड़े उभरकर सामने आ रहे हैं। देश की ताकत शस्त्रों पर निर्भर नहीं करती हालांकि हम हथियार बाहर से मंगाकर अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहे हैं, उसकी असली ताकत जनता के दृढ़ मनोबल तथा साहस पर निर्भर करती है।

हम अब भी शान्ति की नीति पर दृढ़ हैं और सभी विवादों को शांतिपूर्ण तरीकों से हल करने के पक्ष में हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम हमले के सामने झुक जाएँ, ऐसा करना कायरता होगी। देश की आजादी की रक्षा की जानी चाहिए।''

स्वप्न पूर्ण होगा

नेहरू के जीवन की सबसे बड़ी साध यही थी—जो उन्होंने राष्ट्र के नाम अपने एक भाषण में कही :

''हमारी पीढ़ी के महानतम व्यक्ति की (गांधीजी की) यही आकांक्षा थी कि प्रत्येक आँख से प्रत्येक आँसू को पोंछ दिया जाय। यह कार्य हमारी क्षमता से अभी भले ही बाहर हो, किन्तु जब तक आँसू तथा दुख-दर्द है; तब तक हमारा कार्य पूरा न होगा।'

पण्डितजी के शब्द, उनके जीवन की साध के लिए पूरे राष्ट्र को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हर दुखी व्यक्ति की आँख-से-आँसू पोंछकर उसे सच्ची स्वतन्त्रता के दर्शन करायेगा।

: २ :

राष्ट्रीय एकता

कोई भी राष्ट्र उस समय तक न आगे बढ़ सकता है, न अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने में ही समर्थ हो सकता है, जिसमें एकता नहीं है। छोटी-से-छोटी कमी भी, मामूली से मामूली मतभेद भी कल्पना से अधिक नुकसान पहुँचा सकते हैं।

अपने महान् और शानदार देश के इतिहास के पृष्ठों को जब हम उलटते हैं, तो हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। हमारा हजारों साल का इतिहास आपसी भेदभाव, वैमनस्य, फूट और संघर्ष का है। हमारा यह पारस्परिक संघर्ष इतना गहन हो गया कि हमारे मन से राष्ट्रीयता और जातीयता की भावना का ही लोप हो गया। जब हम अपने आपसी झगड़ों को न सुलझा सके, तब हमने विदेशियों को आमंत्रित किया और हमारा हज़ारों साल का इतिहास यह स्पष्ट संकेत करता है कि राष्ट्रीय एकता के अभाव में हमने क्या नहीं सहा, क्या नहीं देखा।

इतिहास के पृष्ठ बहुत निर्मम होते हैं, हृदय-हीन होते हैं, भावुकता की भाषा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। वहाँ तो केवल यथार्थ होता है, कड़ुआ और कठोर, उसमें सचाई होती है लेकिन ऐसी सचाई जिसे ग्रहण करना, गले से नीचे उतारना, मुश्किल होता है।

राष्ट्रीय एकता बुनियाद है, राष्ट्र के उन्नयन की, उत्थान की। इसके बिना राष्ट्र निर्जीव है, पंगु है, निष्प्राण है।

देश की ताकत

जवाहरलाल नेहरू ने अक्टूबर १९५२ में प्रेसीडेन्सी कालेज में

भाषण करते हुए कहा है कि :

"—मैं समझता हूँ कि इस संसार की सेवा तभी अच्छी तरह कर सकेंगे, जब अपने देश की और अपनी सेवा अपने-अपने स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए नहीं, बल्कि सारे देशवासियों को अपने एक बड़े परिवार के रूप में मानकर करें।

पिछले जमाने में हम वर्ग और जातियाँ बनाकर अपने को बाँटने के लिए तरह-तरह की दीवारें खड़ी करते रहे। इससे हमारा राष्ट्र कमजोर हुआ। जब तक हम इस मनोवृत्ति को छोड़ते नहीं, तब तक भविष्य में भी हमारे राष्ट्र के कमज़ोर होने का खतरा है।

भारत की आगे बढ़ने की शक्ति इसी कारण कमज़ोर पड़ी थी कि वह सैकड़ों वर्षों तक बाहरी दुनिया से अपना नाता तोड़े रहा। वह अपनी बड़ी-बड़ी बातों पर ही गर्व करता रहा—उसने इस तरफ ध्यान नहीं दिया कि बाकी दुनिया में क्या हो रहा है। फलस्वरूप भारत जहाँ था, वहीं रह गया और तरक्की नहीं कर सका।

अगर आपने मानव इतिहास पढ़ा है, तो आपको पता होगा कि कोई भी कौम या राष्ट्र सिर्फ इसलिए बड़ा नहीं बन जाता कि उसके पास सोना और चाँदी ज़्यादा है। किसी भी देश में जितना ज़्यादा लोहा, कोयला और दूसरी प्राकृतिक सम्पदा होगी, उतना ही वह अमीर देश होगा—प्राकृतिक साधनों का हर देश के लिए महत्व होता है; लेकिन असली फर्क उस देश के निवासियों के बढ़िया गुणों के कारण पड़ता है। अक्सर छोटे-छोटे देश बहुत ताकतवर बने हैं और उन्होंने बहुत तरक्की की है, लेकिन उनकी तरक्की का राज यह नहीं है कि उनके पास लोग ज्यादा गिनती में थे, बल्कि यह है उनके लोग बेहतर गुणों वाले थे।"

एकता का सूत्र

—भारत विविधताओं का देश है। उत्तर में हिमालय जिसकी

चोटियाँ बर्फसे ढकी रहती है, लद्दाख और काश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तरह-तरह के लोग मिलते हैं। जलवायु और भौगोलिक ढाँचा भी एक-दूसरे से अलग है और भी बहुत-सी बातें हैं, जो मेल नहीं खाती। राजनीतिक दृष्टि से हम बेशक एक हैं, लेकिन लोगों में मेल-मिलाप बढ़ाकर, उन्हें एक-दूसरे के नजदीक लाकर, हमें सबको और अधिक दृढ़ता से एकता के सूत्र में बाँधना है।

लोगों पर जबर्दस्ती हम कोई अनुशासन नहीं थोपना चाहते। ऐसा करना बहुत बुरी बात होगी। हम चाहते हैं कि भारत के भिन्न-भिन्न भागों में जो सभ्यता जन्म लेकर बढ़ी है, वह बनी रहे लेकिन इसके साथ ही अनेकता में एकता रहनी चाहिए। हम चाहते हैं कि लोग दिल और दिमाग से एक-दूसरे से नजदीक आयें। धर्म, जाति-पांति और सम्प्रदाय के नाम पर खड़ी की गई इन सब दीवारों को हम तोड़ देना चाहते हैं, जो हमें अलग करती हैं, जो हमारे मिलकर काम करने के रास्ते में रुकावट हैं और जो हमें तंगदिल बनाती हैं। तंगदिली हममें फूट, झगड़े और विवाद पैदा करती हैं।"

एक बुनियादी चीज

२२ सितम्बर १९५७ में भाषण में पण्डितजी ने कहा :

"—भारत को आज बुनियादी तौर पर जिस चीज की जरूरत है, वह एकता है। इससे हम सब लोग, जो इस महान् देश में रहते हैं, भारत के नागरिक बनते हैं—कुर्ग या मैसूर या किसी विशेष-राज्य या देश के किसी खास भाग के नागरिक नहीं, बल्कि भारत के नागरिक।

अगर आप और देश में जाते हैं, तो वहाँ के लोग आपको भारतीय गणतन्त्र का नागरिक मानते हैं। विदेशों में अधिकतर लोग भारत के विभिन्न राज्यों के बारे में नहीं जानते, वे भारत को जानते हैं। इसलिए हमें भारत की एकता को जो कि एक बुनियादी बात

है, हमेशा याद रखनी चाहिए और इस देश के बहुत सारे विभागों में खो नहीं जाना चाहिए।

अगर हम तरक्की करेंगे, तो वह सारे भारत की तरक्की होगी, भारत के किसी एक भाग की नहीं। अगर भारत का पतन होगा, तो हम सबका पतन हो जायेगा।"

अच्छी कसौटी

आगे पंडितजी ने कहा :

"—हम संविधान में यह तय कर चुके हैं कि भारत के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, यहूदी या जैन हो या बौद्ध हो, यानी किसी भी धर्म में विश्वास न रखने वाला व्यक्ति हो; समान अधिकार प्राप्त होंगे। जो व्यक्ति प्रदेश या धर्म या भाषा के नाम पर इस मार्ग में रुकावट पैदा करता है, वह न केवल भारत की, बल्कि अपने प्रदेश, धर्म और भाषा की भी कुसेवा करता है।

याद रखिये कि जो चीज हममें फूट पैदा करती है और एक-दूसरे से अलग करती है, वह बुरी है। दूसरी ओर, जो बात हमें एक-दूसरे के नजदीक लाती है और हममें एकता पैदा करती है, वह अच्छी है। आपके सामने कोई भी समस्या पेश हो, इस कसौटी पर उसकी परख कीजिये। यह एक बहुत ही अच्छी कसौटी है।"

धर्म निरपेक्षता

"भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमारा कोई धर्म नहीं है। इसका मतलब यह है कि सभी धर्मों का आदर किया जाय और हर आदमी को, चाहे उसका धर्म जो हो, बराबरी का मौका मिले, इसलिए हमें अपनी सभ्यता की इस महत्वपूर्ण बात को हमेशा अपने दिल में रखना चाहिए। जो लोग

भारतवासियों के बीच दीवारें खड़ी करते हैं और फूट डालने वाली बातों को बढ़ावा देते हैं, वे न तो भारत की सेवा करते हैं न अपनी सभ्यता की। वे हमें देश में कमजोर करते हैं और बाहर हमारी इज्जत को धब्बा लगाते हैं। इसलिए यह हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है कि हम भारत की भावात्मक एकता के लिए काम करें।"

भारत एक है

"पुराने जमाने से भूगोल ने हमारे महान् देश को एक रखा है, इतिहास ने एक रखा है। हमारी संस्कृति और हमारे आदर्शों ने हमारी आशाओं और आशंकाओं ने, पराजयों और विजयों ने, हमारे देश को एक रखा है। यह पुराने जमाने की बात हो गई। आज के जमाने में हमारी कोशिशों से हमारे बलिदानों और संघर्षों से, जिनसे हमने हिन्दुस्तान की आजादी हासिल की, भारत एक है।

इसलिए आज, जबकि हम राजनीतिक तौर पर अन्ततः एक हो गये हैं और हमारा देश एक आजाद देश है, हम पुराने ज़माने से चली आ रही अपनी एकता को तबाह होने की इजाजत कैसे दे सकते हैं। अपनी एकता को तोड़कर हम उस आज़ादी के लिए खतरा कैसे पैदा कर सकते हैं; जिसे पाने के लिए हमने इतना संघर्ष किया है? हमारे इतिहास और वर्तमान ने हमारे एक होने का आधार तैयार किया है। इसी तरह, हमें आने वाले जमाने में भी एक होना चाहिए, जिसमें हम बड़ी कोशिशों से अपने करोड़ों लोगों को खुशहाल बनाने की कोशिशें कर रहे हैं। हम किसी भी इलाके में रहें; हमें एक होकर काम करना चाहिए, एक होकर त्याग और बलिदान करने चाहिए।"

एकता की खोज

"पिछले कुछ साल में दुनिया में बड़ी-बड़ी तब्दीलियां आई है

जीवन के प्रति अनेक दृष्टिकोण होते हैं, यदि व्यक्तिशः इन विशेषताओं में क्रमबद्ध मेल हो, तो बहुत अच्छी बात है, अन्यथा इन विभिन्न व्यक्तित्त्वों के कारण राष्ट्र के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और संकट आ जाता है। सामान्य रूप में इनमें आपसी तालमेल की प्रक्रिया चालू रहती है और एक सन्तुलन बन जाता है। यदि सामान्य विश्वास अवरुद्ध हो जाय, अथवा कोई ऐसा आकस्मिक परिवर्तन हो, जिसे राष्ट्र आसानी से आत्मसात् न कर सके, तब उन विभिन्न व्यक्तियों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। हमारे कृत्रिम संघर्षों और मतभेदों की सतह के नीचे, लम्बे अरसे तक प्रगति के अवरोध के कारण भारत के दिलो-दिमाग में एक स्थायी संघर्ष चलता रहता है। सुस्थिर और उन्नतिशील समाज में आदर्शों का एक सुदृढ़ आधार और गतिमान दृष्टिकोण होना चाहिए। दोनों गुण ही आवश्यक प्रतीत होते हैं, क्योंकि गतिमान दृष्टिकोण के बिना समाज में सड़ांध पैदा हो जायगी और उसका ह्रास आरम्भ हो जायगा और आदर्शों के दृढ़ आधार के बिना उसके छिन्न-भिन्न और नष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

आत्मीयता का अनुभव

राष्ट्र की भावना इससे ध्वनित होती है, जिसके सब निवासी एक-दूसरे के साथ पूरा लगाव, आत्मीयता अनुभव करते हो, दुनिया के किसी भी हिस्से में, किसी भी कौम में छोटे-मोटे मतभेद, विचार-भेद आदर्शों और सिद्धान्तों में कुछ-न-कुछ तो विभिन्नता रहेगी ही। पर जहाँ राष्ट्र की एकता, उसके संगठन और उसकी स्वाधीनता का प्रश्न हो, वहाँ इन सब मतभेदों को भुला देना चाहिए। आत्मीयता पनपने का और एक-दूसरे के निकट आने का केवल एक ही मार्ग है कि अपने स्वार्थों से अलग रहकर लोगों को अधिक-से-अधिक देने की इच्छा रखे। जब हम किसी को कुछ देते हैं, तो इससे हमारे

मन को एक उच्च अनुभूतिमय सन्तोष पैदा होता है और इससे जीवन तथा सामाजिकता पुष्ट होती है।

जातिभेद का विष

हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि जातिभेद ने विराट समाज के छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर उन्हें संगठित किया है और इसी कारण जहाँ हमारी राष्ट्रनिष्ठा मज़बूत होनी चाहिए थी, वहाँ हम जातिनिष्ठ, प्रांतनिष्ठ और वर्गनिष्ठ होने में गौरव का अनुभव करते हैं। विदेशी हुकूमत ने जिस प्रकार प्रान्तों की रचना की थी, उसमें सुधार होना जरूरी था लेकिन इसी काम को अगर स्वाधीन होने के बाद ही कर लिया गया होता, तो इस प्रकार की दिक्कतें न आतीं और न वातावरण इतना विषैला होता। उस समय जन-मन में उदारता की भावना थी और अपने देश का एक बड़ा हिस्सा अपने से अलग हो जाने के कारण भारतीय मानस दुखी भी था—उस समय यह सब आसानी से किया भी जा सकता था।

राज्य और प्रांत

उस समय भारतीय नेताओं के मन में यह खयाल जमा था कि भाषावार प्रान्तों की रचना एकता की दृष्टि से एक खतरनाक बात है और इसी भावना ने जो बात साधारण थी, उसे खतरनाक बनाया जरूर। और वही हुआ जो नहीं होना चाहिए। एक फर्क जरूर रहा कि जहाँ पहले प्रान्त थे, अब उन्हें राज्य के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। कुछ विचारकों के खयाल से यह अच्छा नहीं हुआ। प्रान्त का जहाँ तक सवाल था, उस शब्द के साथ देश की एकता पूरी तौर से स्पष्ट थी। राज्य से ऐसा लगता है कि जैसे वे अपने में स्वतन्त्र हैं।

हमारे नेताओं ने अमेरिका और रूस के स्टेटस शब्द से प्रेरणा

लेकर राज्य शब्द बनाया है।

विदेशी भाषा में सोचने वाले और विदेशी विचारों से अनुप्राणित अगर भारतीय नेता जनमानस को समझ सकते, तो इस शब्द का इस्तेमाल नहीं होता। लेकिन उन्होंने लोकमानस को समझने की कभी जरूरत ही महसूस नहीं की।

कितनी बड़ी विडम्बना है कि हमने सैकड़ों देशी राज्यों को तोड़ा और स्वयं राज्यों की स्थापना की। यह स्पष्ट है कि यह उत्पात जो हुए, वह सब राज्य शब्द के कारण ही हुए है; भाषा की वजह से नहीं। भाषा का तो नाम उसमें अवसर का उपयोग करने के लिए आन्दोलन को मजबूत बनाने के लिए किया गया है।

एक भाषा, एक लिपि

देश का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हजारों वर्षों में कभी भी भाषा के नाम पर कोई झगड़ा या संघर्ष नहीं हुआ। उत्तर-प्रदेश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन कभी किसी ने एक-दूसरे को ललकारा हो, ऐसा कहीं नहीं मिलता।

पर इससे जो भाषा विवाद उठा, उसमें पण्डितजी का दृष्टि-कोण बिलकुल स्पष्ट था, वह एक भाषा और एक लिपि देश की एकता के लिए जरूरी समझते थे।

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक भाषा, एक लिपि का होना बहुत जरूरी है। पण्डितजी इस बात को स्वीकार करते थे। राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में अपने भाषण में उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि : "हिन्दी ही राजभाषा हो सकती है, दूसरी भाषाओं में वह सामर्थ्य नहीं है।"

यह कहना कि पण्डितजी के विचार अभी हाल ही में ऐसे बने थे, ऐसा नहीं है। जैसे गांधीजी के आरम्भ से ही स्पष्ट विचार थे कि हिन्दी में ही राष्ट्रभाषा होने की क्षमता है और उसके

लिए उन्होंने प्रयत्न भी किये।

दासता का प्रभाव

पण्डितजी ने भी बहुत वर्षों पूर्व इन्दिरा को पत्र में लिखा था :

"—दासता ने हमारे दिमागों को इतना जकड़ लिया है, हम अंग्रेजी लिखना और बोलना भी गौरव की बात समझते हैं (पण्डितजी ने यह पत्र भी अंग्रेजी में ही लिखा था, दो पंक्तियाँ लिखने के बाद ही उन्होंने लिखा) पर इन्दिरा तुम भी हँसोगी, मैं कैसा धोखेबाज आदमी हूँ, जिस भाषा के खिलाफ, तुम्हें यह लिख रहा हूँ, उसी में अपना पत्र भी तुम्हें भेज रहा हूँ, लेकिन मेरी अपनी दुर्बलता का कारण मेरी सारी शिक्षा-दीक्षा ऐसे वातावरण में होना है, जो हिन्दी से बहुत दूर थी, अब मैं अनुभव करता हूँ कि मुझे जल्दी ही हिन्दी सीख लेनी चाहिए।"

पण्डितजी इस बात के प्रबल समर्थक थे कि भारतीय भाषाओं को निकट लाने के लिए देवनागरी को सामान्य लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। राष्ट्रीय एकीकरण तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक कि देश में एक ऐसी भाषा न हो जिसमें स्वतन्त्रतापूर्वक देश के किसी भी कोने का नागरिक अपने विचार प्रकट कर सके। पण्डितजी इसके लिए प्रयत्नशील थे। बहुत गम्भीरता के साथ इसे अनुभव करते थे।

भाषा के उत्पातों के साथ-साथ साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता तथा जातिवाद के नारे भी पण्डितजी को परेशान करते थे। वे चाहते थे कि देशवासियों में सच्ची भारतीयता पैदा हो।

मजबूत कौम

उन्होने १५ अगस्त १९६१ को कहा :

"कोई भी व्यक्ति अगर ऐसा काम करे, जिससे हमारी एकता

टूटती है और हम कमज़ोर पड़ते हैं, तो वह हिन्दुस्तान को नुकसान पहुँचाता है।

बदकिस्मती से, हम एकता की पुरानी कहावत को भूलकर साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता तथा जातिवाद का नारा लगाते हैं और भाषा के सवाल पर लड़ पड़ते हैं, कोई भी ऐसा काम जो हमें एक-दूसरे से अलग करता है या हममें रंजिश या द्वेष पैदा करता है, बुरा है। वह हमारी तरक्की के उस शानदार रास्ते में रुकावट है, जिस पर हम बढ़ रहे हैं।

"हमें एक मजबूत कौम चाहिए, दिलेर कौम चाहिए, ऐसी कौम चाहिए जो एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे को भाई-बहिन समझें।

"हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल है एकता का—दिमागी एकता, मानसिक एकता और दिलों की एकता का; जिससे कौम आगे बढ़ने की प्रेरणा ले। हमें भावात्मक एकता की ज़रूरत है। हम दूसरी चीजों में भले ही तरक्की कर लें और खुशहाल हो जाएँ, लेकिन यह सब बेकार होगा, अगर हम मिलकर न रह सकें और मिलकर काम न कर सकें।"

भारत का धर्म

"हमारा समाज भारतीय समाज है, जो सबको अपनाता है। हिन्दुस्तान में अलग-अलग धर्म हैं; लेकिन जो भी धर्म हिन्दुस्तान में हैं, वे भारत के धर्म हैं, उन सबकी हमें इज्जत करनी है। यह आज की बात नहीं है, हजारों साल से यह प्रथा चली आ रही है। अपने-अपने धर्म पर लोग रहें, यह ठीक है। अपने-अपने धर्म पर रहते हुए हम सब को याद रखना चाहिए कि एक और बड़ा धर्म है—भारत का धर्म, हिन्दुस्तान का धर्म और उस धर्म में सबको मिलकर रहना है, मिलकर काम करना है और मिलकर आगे बढ़ना है।

"मैं आपको नाप-तोल करने का एक तरीका बताऊँ, जो काम

आप कराना चाहें आप सोचें कि उससे चीजें जुड़ती हैं या टूटती हैं। यही माप-दण्ड है। अगर जुड़ती हैं, तो वह अच्छा काम है अच्छी बात है। अगर लोग टूटते हैं, अलग होते हैं, वर्गों में बँटते हैं, तो वह बुरा काम है, बुरी बात है। हिन्दुस्तान में सबसे पहली बात है, आपस में मिलना, अनुशासन, पैरों में अनुशासन नहीं, दिलों और दिमागों का अनुशासन : दिमागी एकता और मानसिक एकता होनी ही चाहिए।"

पण्डितजी ने अक्सर कहा है कि प्राचीन इतिहास और कथाओं से हमें अच्छी बातों को लेना चाहिए और जो बातें आज के युग में हमारे लिए ठीक नहीं हैं, हमें उनको छोड़ देना चाहिए। उनसे लिपट कर बैठे रहने में सिवा हानि के कोई लाभ नहीं है।

आत्म-विश्वास और दृढ़-संकल्प की तो पण्डितजी मूर्ति ही थे। जेम्स केलर की एक लघु कहानी उन्होंने एक बार सुनाई, जिसे मैं उद्धृत करता हूँ।

"—भयानक तूफान मचला, नौका डगमग करने लगी। एक युवक रस्सी के सहारे ऊपर जा पहुँचा। उसने धैर्य से पाल को मज़बूती से बाँधा और रस्सी के सहारे नीचे उतरने लगा कि उसकी दृष्टि हुंकारते भयानक समुद्र पर पड़ी, जिसकी उतुंग लहरें नाव को निगल जाना चाहती थीं। समुद्र की भयंकर गर्जना से उसके हाथ-पाँव फूल गये। लगा कि साहस ने उसका साथ छोड़ दिया। वह चिल्लाया—'बचाओ, मैं गिर रहा हूँ।'

नीचे वृद्ध माँझी खड़ा था, उसने कहा—'नीचे मत देख लड़के, अपनी आँखें ऊपर ही रख।'

युवक माँझी सरलता से नीचे उतर आया।

जीवन में उच्च स्तर पर पहुँचने के बाद अगर आप अपनी ऊँचाई से कभी घबड़ा उठें, तो पूरे आत्म विश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ अपनी आँखें सामने की ओर ही रखें। जिस गह्वर से निकल

कर आप ऊपर चढ़े हैं मुड़कर उसकी ओर देखना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।"

अंग्रेजी शासन का विष

मुसलमानों का सदियों का शासनकाल कभी हिन्दू-मुसलमान को साम्प्रदायिक आधार पर नहीं बाँट सका। हम इस बात की वकालत नहीं करते कि कुछ मुस्लिम शासकों में साम्प्रदायिकता नहीं थी लेकिन इसके साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उन्होंने कभी धर्म के आधार पर भारतीय समाज और राष्ट्र के दो टुकड़े करने की कल्पना नहीं थी। लेकिन डेड़ सदी के अंग्रेजी शासनकाल ने भारतीयता की जड़ों में जिस विष को घोला है, न जाने वह कब तक हमें जलाता रहेगा।

आज इस प्रकार की जितनी भी समस्यायें देश के सामने हैं, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा तथा क्षेत्र की, वह सब अंग्रेज कूटनीति की ही देन हैं। अलगाव की जितनी भी प्रवृत्तियाँ देश को चारों ओर से घेरे हुए हैं, उन सबका जन्म अंग्रेजों के द्वारा ही हुआ और उन्होंने ही इसे बढ़ाया।

देश के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण का सबसे दुर्भाग्य-पूर्ण अध्याय है,—संकीर्ण मुस्लिम साम्प्रदायिकता—जिसे राष्ट्रीयता का रूप मिल गया।

इसी साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए पण्डित नेहरू जी-जान से जुटे रहे। साम्प्रदायिकता के इस राक्षस को समाप्त करना ही होगा।

धर्म निरपेक्ष भारत में हर एक को अपने धार्मिक विचारों और विश्वासों की आजादी है। कुछ लोगों का यह कहना है कि पण्डित नेहरू नास्तिक थे। उनकी अज्ञानता का सूचक है।

मानव में आस्था

हिन्दुस्तान की कहानी में पण्डितजी ने लिखा है—

"—हम मानव में आस्था खो नहीं सकते। हम ईश्वर की विद्यमानता से इनकार नहीं कर सकते, परन्तु यदि हम मानव में आस्था से ही इनकार कर दें, तो हमारे लिए कौन-सी आशा बच रहती है। ऐसी अवस्था में हमारे लिए सब कुछ निरर्थक हो जाता है।"

राष्ट्र अमर है

पण्डितजी के बाद हमारे देशवासियों पर यह जिम्मेदारी आ गई है कि हम अपनी राष्ट्रीय एकता को किसी भी प्रकार खंडित नहीं होने दें। चीन के आक्रमण के समय देश ने जिस अटूट एकता का परिचय दिया था, वही एकता हमें देश में पैदा करनी है।

हमें पण्डितजी यह कथन सदैव अपने सामने रखना चाहिए कि "राष्ट्र अमर है। नर और नारी जन्मते और मरते हैं, परन्तु राष्ट्र सदा अमर रहता है। इसमें अमरत्व नाम का कोई चीज है।'

इसके साथ ही हमें भगिनी निवेदिता का हमें यह कथन भी स्मरण रखना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता का आधार

"—मेरा विश्वास है कि भारत एक अखण्ड और अविच्छिन्न देश है। राष्ट्रीय एकता, समान विकास, समान हित और समान प्रेम के आधार पर कायम होती है।

मेरा विश्वास है कि वेदों और उपनिषदों में धर्मों और राज्यों की स्थापना में विद्वानों की विद्वत्ता और सन्तों की ध्यान-धारणा में जो शक्ति प्रकट हुई थी, उसका हमारे बीच पुनर्जन्म हुआ है और उसका नाम आज राष्ट्रवाद है।

मेरा विश्वास है कि भारत के वर्त्तमान की जड़ें उसके भूतकाल में गहरी बैठी हुई है और उसका भविष्य उज्ज्वल और सुनहरा है।

: ३ :

लोकतन्त्र का प्रयोग

भारत संसार का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश है, जहां गणतन्त्र की सफलता के लिए प्रयत्न और प्रयोग किया जा रहा है। संसार की आखें इस सफलता की ओर लगी हैं।

वैसे हमारे देश के लिए यह प्रणाली नयी नहीं है। संसार का अधिकांश भाग जब असभ्य था, हमारे यहां गणतन्त्र सफलता के साथ चल रहे थे। लिच्छिवी और वैशाली के गणतन्त्र इसके उदाहरण हैं।

परन्तु सदियों की पराधीनता ने भारत की आत्मा को ही कुचल दिया। इसलिए कोई भी विचार जो बाहर से आता है, हमें नया लगता है। पूर्व जिसने पश्चिम को सदा प्रकाश दिया, आज उसका मुंह जोहता है। इसका कारण हमारी सदियों की कड़ी गुलामी ही है।

मार्क्स का मत

भारत के बारे में २२ जुलाई सन् १८५३ में कार्लमार्क्स ने एक लेख लिखा, जो ८ अगस्त सन् १८५३ के न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून में प्रकाशित हुआ।

इस लेख का शीर्षक था—भारत में ब्रिटिश शासन के भावी परिणाम।

इस लेख का एक अंश इस प्रकार है :

"—हर हालत में, हम पूरे विश्वास के साथ यह आशा तो कर

ही सकते हैं, चाहे कुछ देर से ही सही, उस महान् और हृदयग्राही देश का पुनरुत्थान अवश्य होगा, जिसके निम्न से निम्न वर्गों के सौम्य नागरिक भी, राजकुमार सोल्ती कोष के शब्दों में—इटली के निवासियों से भी अधिक कुशाग्र और कुशल होते हैं, जिनकी पराधीनता में भी एक गम्भीर और महान् शान्ति के दर्शन होते हैं। जिन्होंने अपनी स्वाभाविक तंद्रा के बाद भी अपनी वीरता से ब्रिटिश अफसरों को चकित कर दिया है, जिनके देश से हमें हमारी भाषाएं और हमारे धर्म प्राप्त हुए हैं, और जिनके बीच प्राचीन जर्मनी के प्रतिनिधि के रूप में जाट और प्राचीन यूनानियों के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मण आज भी मौजूद हैं।"

चैतन्य में आस्था

एक यह प्रश्न खड़ा होता है कि हमारी संस्कृति का ऐसा कौन-सा तत्व था, जिसके कारण इतने भयानक तूफानों में भी हम अविचल और अडिग खड़े रहे। हम झुके, झुकते गये, सर्वनाश के कगार पर पहुँच गये, लेकिन फिर भी टूटे नहीं और दिन ऐसा आया है जब हमारी छाती से टकरा कर नुकीली और विषैली संगीनें मुड़ गईं।

वह तत्व है—हमारा आत्मबल, आत्म-विश्वास और भारतीयों की चैतन्य में अटूट आस्था। इसी आस्था से हमने बड़े-बड़े तूफानों का मुकाबला किया। चैतन्य में (सद् के प्रति आग्रह रखते हुए विचार और कर्म का समन्वय) आस्था के कारण ही हमने अपने को नये वैज्ञानिक युग के अनुकूल ढाल लिया।

जनतन्त्री व्यवस्था अपनाने में हमें संकोच नहीं हुआ। जनतन्त्र संसार के अनेक देशों में है, पर जिन देशों में अधिक प्रचार है, उनमें रूस, अमरीका, इंग्लैण्ड, चीन और भारत का नाम प्रमुख है। जनतन्त्र में मौलिक अधिकार जनता के हाथ में होते हैं। सरकार का काम केवल इतना होता है कि वह एक कार्यान्वित करने वाली

संस्था के रूप में कार्य करती हैं।

रूस में जनतन्त्र पर कम्यूनिस्ट पार्टी का एकाधिपत्य है। कुछ नेताओं के हाथ में शक्ति है वे संगठन के नाम पर जो चाहे, सो करते हैं, यदि कोई विरोध करता है, तो उसे मृत्यु-मुख में ढकेल दिया जाता है। इसी प्रकार का जनतन्त्र चीन में भी है।

इंग्लैण्ड और अमरीका में दो पार्टियाँ हैं और उलट-फेर कर सत्ता उन्हीं में से किसी के हाथ में रहती है।

संविधान का मूलाधार

२६ जनवरी सन् १९५० को भारत ने गणतन्त्र की घोषणा की और नया संविधान लागू हुआ।

हर देश अपने संविधान द्वारा शासित होता है। संविधान को ध्यान में रखते हुए शासन प्रबन्ध ठीक चलाने के लिए कानून बनाये जाते हैं। लोग कहते हैं कि कानूनों का राज है। यह ठीक है, क्योंकि कानून में सब को समान अधिकार हैं और सब बराबर हैं। संविधान के अनुच्छेद १४ में बताया गया है कि सबके लिए एक ही कानून होगा, जो सब पर समान रूप से लागू होगा। यदि किसी देश का कानून सब को समानता नहीं देता, तब निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि वहां कानून का राज नहीं है।

समानता के मूल सिद्धान्त का आधार यह है कि देश के सभी नागरिकों को धर्म, जाति, जन्म, स्थान तथा स्त्री या पुरुष का भेद भाव लिए बिना समान अवसर दिया जायगा। यह व्यवस्था संविधान के १५ अनुच्छेद में है।

संविधान के १७ अनुच्छेद में अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है। संविधान में यह स्पष्ट निर्देश है कि राज्यों में उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की यह जिम्मेदारी है कि वह नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करे, जिन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य ने

सदियों तक संघर्ष किया है।

इससे यह स्पष्ट है कि हमारे देश के जनतंत्री विधान में सबको समान हक है।

जनता की शक्ति

जनतन्त्र एक ऐसी शासन-प्रणाली है, जिसमें जनता के हाथ में शक्ति होती है। जनता अपनी शक्ति का प्रयोग प्रत्यक्षतः अथवा निर्वाचित अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है। यह व्यवस्था ही जनतांत्रिक व्यवस्था कहलाती है। पर देखा यह जाता है कि जनता के नाम पर शासन करने वाला कोई दल अथवा शक्तिशाली नेतृत्व जन-भावना की अवहेलना करने लगता है।

किसी भी शासन-व्यवस्था को परिभाषा के कारण हम जनतांत्रिक कहकर सम्बोधित नहीं कर सकते, अपितु जब वह व्यवहार से जनतन्त्री हो या वास्तव में जनता द्वारा ही नियंत्रित हो, तभी वह सफल और उचित कही जा सकती है।

पंचायती व्यवस्था

जनतांत्रिक व्यवस्था का ढाँचा विकेन्द्रीकरण है। उसका रूप पंचायती राज है। पंचायती राज का ढाँचा हमारे देश में तीन रूपों में है।

(१) ग्राम पंचायत। (२) विकास खण्ड पंचायत समिति। (३) जिला परिषद।

पंचायत और पंचायत समितियों का यह कार्य है कि वह कामों का समन्वय करे, जो कार्यक्रम हो कार्यान्वित करने की दिशा में भी पग उठायें।

हमारे यहाँ अगर पंचायती व्यवस्था का यह रूप सफल हुआ तो शासन प्रबन्ध जिलों में इस प्रकार से होगा कि पंचायतें ग्राम

सरकार के रूप में कार्य करेंगी और पंचायत समितियां खण्ड सरकार के रूप में तथा जिला परिषदें जिला सरकार के रूप में काम की देखभाल करेंगी। जिस प्रकार आज राज्यों और केन्द्रीय सरकार के बीच में सीमा का निर्धारण किया गया है, उसी प्रकार सभी स्तरों पर किया जायगा।

पण्डित नेहरू ने कहा है :

"पंचायत राज्य अगर हमें लाना है, तो जनता के हाथ में ताकत सौंपनी होगी, बीच के रास्तों वाली बात नहीं चलेगी कि हम जनता को ताकत दें भी और न भी दें, जनता पर हम भरोसा करें और न भी करें।"

"अधिकार देने से हम चाहे नरक में ही क्यों न चले जायें, पर जनता को अधिकार देना चाहिए। एक बार नरक में जाने पर हम उससे बाहर जरूर निकल आयेंगे।"

जनता भागीदार बने

भारत ४५ करोड़ की आबादी वाला एक विशाल देश है। इसमें तमाम लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को तब तक पूरा नहीं किया जा सकता, जब तक जनता को भागीदार नहीं बनाया जायेगा। जनतन्त्र तभी सफल हो सकता है, जब जनता के मन में स्वतः यह प्रेरणा हो कि वह शासन-प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और उसे उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना है।

पंचायती राज केवल राजनीतिक नहीं होगा, उसका आधार आर्थिक भी होगा। आज की सरकार में एक राजनीतिक संस्था उस समय तक निकम्मी और निष्प्राण रहेगी, जब तक उसका मूलाधार आर्थिक नहीं होगा।

पंचायती राज्य की कामयाबी के लिए चार बातें बहुत जरूरी हैं। जिन पर ध्यान देना चाहिए।

(१) इसके लिए नीचे से नेतृत्व तैयार किया जाय।

(२) सत्ता उत्तरोत्तर बाँटनी चाहिए और सौंपनी चाहिए।

(३) जन-शक्ति और साधन-शक्ति का अधिकतम उपयोग होना चाहिए।

(४) लोगों में योग्यता पैदा की जाय, ताकि वे अपने कार्यों को सुचारु रूप से चला सकें।

समान अवसर

जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिलना ही चाहिए।

पण्डित नेहरू ने कहा है कि :

"—मैं किसी पूर्व धारणा से आबद्ध नहीं हूं और कोई ऐसी धारणा भी नहीं, जिसे आप धार्मिक या कुछ और कहें, परन्तु मैं मानव की जन्मजात आध्यात्मिकता में विश्वास करता हूँ। मेरा मानव की जन्मजात गौरव महिमा में विश्वास है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति को समान सुअवसर प्राप्त होना चाहिए। मैं एक आदर्श के रूप में ऐसे समाज में विश्वास करता हूँ, जिसमें सबको समानता प्राप्त हो, मानव-मानव में कोई अन्तर न हो, भले ही उसकी प्राप्ति कठिन हो। मैं धनियों के दुर्गुणों को उतना ही नापसन्द करता हूँ, जितना निर्धनों की निर्धनता को।"

आर्थिक न्याय

मेरी कहानी में देश में नयी व्यवस्था के बारे में लिखा था :

"—आखिरकर हम उसी मंजिल की ओर जाते हैं, और जिसके अलावा हमारे लिए कोई दूसरी मंजिल हो ही नहीं सकती। एक ऐसी व्यवस्था कायम करना जिसमें पैदावार और बँटवारे पर सारे समाज के हित में नियंत्रण रखा जाये। हमारा आखिरी लक्ष्य एक ऐसा समाज ही हो सकता है, जिसमें कोई वर्ग न हो। जिसमें सबके

लिए बराबर आर्थिक न्याय और अवसर हो और धीरे-धीरे यही व्यवस्था सारी दुनिया में कायम हो जाये। इसके रास्ते में जो भी रुकावट आयेगी, उसे दूर करना होगा, अगर मुमकिन हुआ तो नर्मी से और अगर जरूरी हुआ तो सख्ती से भी।"

जनतांत्रिक प्रणाली की बुनियाद स्नेह पर आधारित होती है। पण्डितजी ने देश को एक नया रास्ता दिया, लेकिन इसके साथ-साथ उनका यह भी कहना था कि अगर कोई अच्छा रास्ता दिखाई देता है, तो देश को उस रास्ते पर जरूर जाना चाहिए।

बेहतर रास्ता

सन् १९५५ में एक फ्रांसीसी पत्रकार को इण्टरव्यू देते हुए उन्होंने कहा था :

"—लेकिन आज दुनिया के मसले इतने पेचीदा और मुश्किल हैं कि उनके सामने मैं अपने को छोटा महसूस करता हूँ। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि जो आदमी जिस रास्ते को सही समझता हो, उसी के मुताबिक वह काम करता रहे। मेरे पास तो इन समस्याओं का इस समय केवल यही हल है। यह भी मुमकिन है कि हम इस बात को हमेशा न बता सकें कि कौन-सा रास्ता सही है और कौन-सी बात ठीक है। लेकिन अगर हम यह जानते हैं कि कौन-सी बात या कौन-सा रास्ता गलत है, तो हमें उससे बचना ही चाहिए।

"हमने हिंदुस्तान में कुछ काम किया है और जब तक हमारे अन्दर ताकत और जोश बाकी रहेगा, तब तक हम काम करते रहेंगे। आखिर इन्सान की जिन्दगी का मकसद, उसका उद्देश्य क्या होता है। जब हरदम नयी बातें होती रहती हैं, जब हर चीज इतनी तेजी से बदलती रहती है, तब कोई भविष्य को किस तरह ढाल सकता है। मैं मजहबी आदमी नहीं हूँ. दुनिया की बातें मुझे अच्छी

नहीं लगतीं और न ही मुझे मरने के बाद दूसरे जन्म में या इसी तरह की दूसरी बातों में कोई दिलचस्पी है। मैं इन बातों के पीछे क्यों परेशान रहूं ? आज जो सवाल हमारे सामने हैं, वह मेरे लिए काफी हैं और मैं इस बात का फिक्र क्यों करूँ कि मरने के बाद मेरा या मेरी नेकनामी का क्या अंजाम होगा। जब मैं मर जाऊँगा तो मेरे लिए क्या फर्क पड़ेगा। मेरे लिए क्या फर्क पड़ता है कि जिन चीजों के लिए मैंने काम किया है वे तरक्की करें, फलें-फूलें और हमारा मुल्क इसी रास्ते पर चलता रहे या अगर कोई बेहतर रास्ता मिल जाय, तो उस पर चल पड़े।

फल की आशा न करो

"इन सब बातों का तत्त्व यही है कि आदमी सदा काम में लगा रहे। गीता में कहा गया है कि हमें किसी फल के लिए कर्म करना चाहिए। पर फल की अधिक चिंता नहीं करनी चाहिए। मतलब यह है काम में लगन और परिश्रम होते हुए भी हमारे मन के अन्दर लाभ के बारे में कुछ वैराग्य होना चाहिए। मैं यह नहीं कह सकता कि मनुष्य इस बात पर कहां तक दृढ़ रहता है। आखिर में यही कहूँगा कि जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, मेरे दिल में किसी मुल्क. किसी कौम या किसी व्यक्ति के खिलाफ नफरत नहीं है। स्वाभाविक है कि किसी कारणवश किसी व्यक्ति को मैं नापसन्द करूँ। उसकी किसी बात या किसी कार्य से मुझे बुरा लगे, लेकिन वक्ती बात होती है। वैसे मैं किसी को भी नापसन्द नहीं करता।"

नेहरू ने उस देश को जो विदेशी हुकूमत के साथ सामंतशाही के शिकंजे में भी बुरी तरह जकड़ा हुआ था, जनतन्त्र की भूमि पर लाकर खड़ा किया है। जनतन्त्र की नींव उन्होंने काफी गहरी की है, उसे सुसंगठित करने की दिशा में काफी काम किया है।

स्वतंत्रता का अन्तर

विदेशों के जनतन्त्र और हमारे देश के जनतन्त्र में अन्तर है। विदेशी जनतन्त्र राजनैतिक स्पर्द्धा पर आधारित है। हमारा जनतन्त्र व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य-भावना से आलोकित है। अंग्रेजी में जिसे 'स्टेट' कहकर सम्बोधित करते हैं, हम उसे सरकार कहते हैं। यही सरकार प्राचीन भारत में राज्य-शक्ति के रूप में थी। पर दोनों में अन्तर है। विदेशों में जितने भी लोकोपयोगी कार्य हैं, उन सबका भार और उसकी जिम्मेदारी स्टेट के हाथों में सौंप दी गई है, लेकिन हमारे देश में राज्य के जिम्मे थोड़े ही कार्य सौंपे गये हैं।

उस समय जो व्यक्ति मिशनरी भावना से काम करते थे। उनकी जिम्मेदारी राज्य की उतनी नहीं थी, जितना कि गृहस्थ की थी। अगर राज्य शिक्षा केन्द्रों को सहायता देना बन्द कर दे, तो उससे अधिक हानि नहीं होती थी। क्योंकि भारतीय जनता स्वयं उस कार्य को पूरा करती थी।

राजा जितने लोकोपयोगी कार्य करता था। समाज उससे कम नहीं करता था—क्योंकि अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करता था। सराय, धर्मशालाएँ, अन्न क्षेत्र, शिक्षा केन्द्र, जलाशय आदि की व्यवस्था समाज करता था। राज्य के द्वारा भी निर्मित जलाशयों की देख-रेख करना समाज अपना कर्त्तव्य समझता था।

स्टेट और समाज

विदेश में हर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत सुख-चैन में लिप्त है, वह समझता है कि स्टेट का कर्त्तव्य है कि वह सब कार्य करे। अपनी जिम्मेदारी वह नहीं समझता। अपनी सब समस्याएँ, सब कार्य उसने राज्यशक्ति को सौंप रखे हैं कि वही करेगी। पर हमारे देश की राज्य-शक्ति अपेक्षाकृत स्वतन्त्र थी। राजा कुछ करता है

या नहीं, प्रजा इसका अधिक ध्यान नहीं रखती थी। केवल यह समझती थी कि धर्म की दृष्टि से राजा का उत्तरदायित्व है। समाज स्वयं आगे आता था और सब काम सुचारु रूप से चलाने के लिए व्यक्तियों को सौंप देता था।

राज्य, समाज और जनता के प्रति मनुष्य का जो कर्त्तव्य था, जिसे हम धर्म भी कह सकते हैं, उससे हर व्यक्ति बँधा हुआ था और यह ऐसा अटूट बंधन था, जिसे व्यक्ति ने स्वेच्छा से अपने चारों ओर लपेट रखा था। हर व्यक्ति का स्वार्थ संयत होता था और उसके अन्दर अधिक-से-अधिक आत्म-त्याग की भावना होती थी।

एक बात इससे स्पष्ट रूप में सामने आ गई विभिन्न संस्कृतियों की प्राण-शक्ति विभिन्न स्थानों में केन्द्रीभूत होती हैं। ऐसे स्थान पर अगर प्रहार किया जाय, जिस पर देश की भलाई का भार है। (जो देश का मर्मस्थल है) तो सम्पूर्ण देश का ढाँचा लड़खड़ा उठेगा। राज्य-शक्ति विनष्ट हो जायगी। इसी कारण योरोप वाले राजनीति को इतना अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

हमारे देश की स्थिति दूसरी है। हमारे देश में जब हमारे समाज पर, संस्कृति पर आक्रमण होते हैं, तभी हम पंगु होते हैं। यही कारण है कि भारतीय सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए प्राण-पण से संघर्ष करते हैं और उसे किसी भी कीमत पर त्यागने को तैयार नहीं होते हैं।

विदेशों में शिक्षा संस्थाओं से लेकर धर्म की शिक्षा तथा भिखारियों को भिक्षा देने तक के सब कार्य स्टेट पर हैं। अगर स्टेट किसी प्रकार लड़खड़ाती है, तो आप समझिये कि जनता का आधार स्तम्भ ही टूट गया और वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकती।

पर हम अपनी धर्म व्यवस्था को जीवित रखते हैं और यही हमारे जीवन का आधार है, यही अन्तर है। पाश्चात्य और पूर्वी

जीवन-दर्शन में।

वह समाज अपने पैरों पर कभी खड़ा नहीं हो सकता, जो अपनी जिम्मेदारियां सरकार के ऊपर लाद देता है।

समाज की शक्ति

हमारा देश अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों का संगम स्थल है, लेकिन भारतीय सामाजिकता को इनमें से कोई न हिला सका। अनेक राजा हुए, अनेक जातियाँ यहाँ आईं। समाज ने अपने काम में कोताही नहीं की। उसने कभी यह पसन्द नहीं किया कि कोई भी बाहरी शक्ति हमारे काम में हस्तक्षेप करे।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में—"जब भारत की राजलक्ष्मी निर्वासित थी, तब भी समाज लक्ष्मी अपने कर्त्तव्य पर आरुढ़ थी।"

मध्यवर्ग ने एक नयी सभ्यता को विकसित किया था, पनपाया था, जिसका मेल हमारी संस्कृति से नहीं बैठता। वह सभ्यता थी मध्यवर्गीय सभ्यता; पूंजीवादी तंत्र। पर यह सभ्यता भारतीय जीवन की समस्याओं को हल करने में असमर्थ थी, क्योंकि उसके अन्दर सामाजिक भावना नहीं रही। इसका नतीजा यह हुआ कि वह आज असमर्थ-सी, असहाय-सी टूट रही है। इस पूँजीवादी व्यवस्था ने हमें शोषण व संहार के द्वार तक पहुँचा दिया है। पूंजी-केन्द्रित और संघर्षमूलक अवस्था में जो समाज चलेगा, पलेगा, वह अमर नहीं हो सकता, दीर्घजीवी नहीं हो सकता। उसका विनाश होगा और उसे कोई रोक नहीं सकता। समाज वही चल सकता है; जिसका आधार श्रम, स्नेह और सहकार हो।

जनतंत्र का आदर्श

पण्डित नेहरू का यही आदर्श था कि जनतंत्र में शक्ति जनता

के हाथ में होगी और उन्होंने जनता के हाथ में दी। शोषण से उन्होंने जनता को मुक्ति दिलाई।

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार चेतावनी देते हुए कहा था कि;

"—असल में तो हमारा मन्दिर आज हमारा रसोईघर है। हमारा परमेश्वर रसोई का बर्तन है और हमारा धर्म है—'मुझे छुओ मत, मैं पवित्र हूँ'—यही स्थिति अगर सौ वर्ष और बनी रही, तो हम सब पागलखाने में होंगे।"

गांधी और उनके उत्तराधिकारी नेहरू ने इस खतरे को समझा और इसे खतम करने के लिए उन्होंने सब ताकत लगा दी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी जनतन्त्र के बुनियादी सिद्धान्त समानता के बारे में कहा है :

"—अगर आसानी से साम्य की रक्षा हुई, तब तो कुशल है, नहीं तो छुटकारे का कोई रास्ता ही नहीं है। मनुष्य जहाँ-कहीं भी मनुष्य को सतायेगा, वहीं उसकी सारी-की-सारी मनुष्यता घायल होगी ही और वह घाव उसे मौत की ओर ही घसीट ले जायगा।"

जनतन्त्र में हर एक को अपना भाग देना होगा। जो असहाय है, गरीब है, शोषित है, उसकी सेवा ही सबसे बड़ी सेवा है। जनतन्त्र के मानी क्या हैं; हर एक सुखी रहे।

दरिद्रनारायण

भारत का भाग्य निर्माता, जनतन्त्र का संरक्षक गरीब है, दरिद्र है, किसान है, उसी को उन्नत बनाने के लिए हमारे प्रयत्न होने चाहिए। अगर किसी नदी-नाले से प्रश्न किया जाय कि तुम इतनी तेजी से कहां जा रहे हो, तो उसका उत्तर होगा, समुद्र को भरने।

बस यही उत्तर हमारा होना चाहिए। हमारे प्रयत्न दरिद्र को, जिसे गांधीजी दरिद्रनारायण कहते थे, सुखी बनाने के लिए होना चाहिए तभी हमारा जनतन्त्र सार्थक होगा, सफल होगा।

हमारी जो कुछ भी शक्ति हो, साधन हों, हमें वह समाज को अर्पित कर देने चाहिए।

हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि कोई अधिक शक्ति और साधन समाज को समर्पित करता है और हम कम करते हैं। यह विचार व्यर्थ है। गंगा-ब्रह्मपुत्र बड़ी नदियाँ हैं, तो बड़ा समर्पण करेंगी, नाला छोटा है उसका समर्पण छोटा होगा। पर महत्व दोनों में किसी का कम नहीं है, बराबर है। प्रश्न परिमाण का नहीं, भावना का है, कर्त्तव्य का है, निष्ठा का है।

भगवान राम के सेतबन्धु अभियान में एक गिलहरी ने भी योग-दान किया। राम ने उसकी भावना की सराहना की।

गांधीजी की कल्पना

गांधीजी के दिमाग में जनतन्त्र की एक तस्वीर थी और वह प्रत्येक गाँव को अपने पैरों पर खड़ा होते हुए देखना चाहते थे। जनतन्त्र की बुनियाद यही है।

"—हर एक गांव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा। अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सब कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी हिफाजत खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी हिफाजत या रक्षा करते हुए मर-मिटने लायक बन सके। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय, या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाय। खयाल यह है कि सब आजाद होंगे और एक दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाज का हर एक आदमी यह जानता है कि उसे क्या करना है और इससे भी बढ़कर जहाँ यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरों

को जो चीज नहीं मिलती है, वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिए, वह समाज जरूर ही बहुत ऊँचे दर्जे की सभ्यता या तहजीब वाला होना चाहिए।

ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति इनका मध्य बिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गांव की खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गांव अपने इर्द-गिर्द के देहात के लिए मिटने को तैयार रहेगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जायगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं, जिसके वे एक जरूरी हिस्सा या अंग हैं।

अगर हिन्दुस्तान के हर एक गांव में कभी पंचायत राज्य कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सचाई साबित कर सकूंगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी—दोनों बराबर होंगे, या यों कहिए न कोई पहला होगा न आखिरी। इस तस्वीर में हर एक धर्म को अपनी पूरी और बराबरी की जगह होगी।

सुधरे हुए लोगों की दुनिया में मेहनत की अपनी अनोखी जगह है। उस मेंऐसी मशीनों की गुंजायश होगी, जो हर आदमी को उसके काम में मदद पहुँचाएं।"

हरिजन सेवक (२८ जुलाई ४६)

पंचायतों से आशा

गांधीजी पंचायतों से जो आशा करते थे, वह इस प्रकार है:

"(१) अपने गांव में शिक्षा व सफाई का ध्यान करे।

एशिया तथा अफ्रीका के अनेक स्वतन्त्र देशों में अधिनायकतंत्र ने लोकतन्त्र को धराशायी कर दिया है।

खतरे

हमारा लोकतन्त्र अभी एक प्रकार से शिशु ही है। इसलिए उसको चारों ओर के हमलों से सावधान रहना है, बचना है और उनका मुकाबला करना है।

सबसे बड़ी बात है—व्यक्ति लोकतन्त्र की महानता को समझे। जब तक वह अपने दिमाग से किसी प्रकार के निर्णय पर नहीं पहुँचता, तब तक वह सही रास्ते को नहीं पकड़ सकता।

नेहरू का इस बारे में विचार है :

"यह देखकर मुझे हैरत हो रही है कि हिन्दुस्तान ही नहीं, तकरीबन सारी दुनिया की दिमागी जिन्दगी में एक तरह की गिरावट-सी आ गई है। धीरे-धीरे लोग जैसे बिना कुछ सोचने-समझने वाले जिन्दा पुतले से बनते जा रहे हैं। जब से उद्योग क्रान्ति ने भौतिक सुख-सुविधा बढ़ा दी है, आदमी जैसे बहुत कम सोचने की तकलीफ़ गवारा करने लगा है। लोकतांत्रिक समाज के लिए यह बड़ी खतरनाक स्थिति है, क्योंकि जब आदमी कुछ सोचता-विचारता नहीं है, तो वह या तो गूँगे राजनीतिज्ञ चुनता है, या फिर किसी डिक्टेटर को लाता है। यही वजह है कि बड़ी-बड़ी तरक्कियों के शानदार जमाने के बाद आज दुनिया एक बहुत बड़ी दुर्घटना के किनारे खड़ी है।

मुझे तो इसमें शक ही है, बिना किसी का मन दुखाये शायद मैं यह भी कह सकता हूँ कि वयस्क मताधिकार जैसे तरीकों से जो प्रतिनिधि यह लोग चुनते हैं, उनमें भी गिरावट आ जाती है।

इसमें शक नहीं कि बहुत कुछ उमदा किस्म के लोग भी चुने जाते हैं लेकिन सोचने की कमी की वजह से उनमें भी गिरावट आने

लगती है। ऐसा लगता है आज की मशीनरी का शोर, प्रोपेगैण्डा के नये तरीके और विज्ञापन आदमी को सोचने ही नहीं देते। इस सारे शोरगुल की प्रतिक्रिया यही होती हैं वह या तो किसी डिक्टेटर को लाता है या किसी गूँगे राजनीतिज्ञ को चुनता है, जो एकदम संगदिल होते हैं। राजनीतिज्ञ शोरगुल सह लेते हैं, वे चुने जाते हैं और जो सह नहीं सकते, वे गिर जाते हैं। यह एक बड़ी ही पेचीदा स्थिति है।"

आज जिसके पास धन अधिक होता है, या जो उसके लिए अधिक व्यय कर सकता है, वह चुनाव में जीत सकता है। दूसरी स्थिति यह होती है कि जो पार्टी अधिक संगठित तथा सम्पन्न हो, चुनाव में उसके प्रतिनिधि जीत जाते हैं।

जब तक जन-चेतना न हो, तब तक कभी भी सच्चे प्रजातन्त्री लोग चुनकर नहीं आ सकते।

आज के चुनाव में हत्याएं तक हो जाती हैं, वोट खरीदना तो एक ममूली-सी बात है। टिकट भी हर पार्टी उसी व्यक्ति को देती है जिसके जाति-भाई उस क्षेत्र में बहुमत में होते हैं। यह सब लोकतन्त्र की परम्परा के विपरीत है।

गलत निर्णय

टिकट देते समय जाति, सम्प्रदाय, प्रान्तीयता को आधार मानकर ही निर्णय किये जाते हैं।

यदि यही स्थिति रही, तो यह खतरा है कि हमारा यह जनतन्त्र कभी भी एकतन्त्र में बदल सकता है।

अराजकता, उपद्रव, हड़तालें लोकतन्त्र के लिए घातक होते हैं। अगर हमें देश में लोकतन्त्री जीवन को कायम रखना है तो हमें संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठना होगा। हम सब को इस बात का पूरा विश्वास रखना है कि यह देश अभिन्न है और इसका कोई

विभाजन नहीं कर सकता।

वैयक्तिक स्वातन्त्र्य एवं लोकतन्त्रीय जीवन प्रणाली के विकास, उसकी रक्षा तथा उसकी मजबूती के लिए हमें कृत संकल्प रहना होगा।

चीन का आक्रमण हमारी लोकतन्त्रीय व्यवस्था के लिए एक चुनौती है। वह हमारी परम्पराओं को खतम कर देना चाहते हैं। व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्र को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भारतीय अपने जीवन की बाजी लगा देंगे।

सतर्क रहें

हमें राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना जागृत करनी चाहिए। तेरा-मेरा की विषैली भावना का हम त्याग करें। राष्ट्र सर्वोपरि है। यह हमारा मूलमन्त्र होना चाहिए।

प्रशासकों को भी यह ध्यान रखना है कि पण्डितजी के व्यक्तित्व के सामने ब्यूरोक्रेटिक सिर नहीं उठा पाते थे। लोकतन्त्र में इन विषधरों के दाँत अब तोड़ने ही होंगे। क्योंकि यह सबसे ज्यादा खतरनाक हैं।

भारतीय जनता सैकड़ों वर्षों से संकटों से गुजर रही है। संकट सहने का साहस और संकल्प भारतीयों का अद्वितीय है। इस संकट का अधिकांश कारण अव्यवस्था ही है। इसको टाला जा सकता है। अव्यवस्था के कारण अगर जनता को कष्ट हो, तो कहां जनतन्त्र टिकेगा, कहां स्वतन्त्रता ? यह नेहरू के उत्तराधिकारियों को सोचना होगा।

लोकतन्त्र की रक्षा करें

स्वतन्त्रता और लोकतंत्र हमारी सबसे बड़ी थाती है। इन

दोनों की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प, जागरूकता और शक्ति तथा साहस की आवश्यकता है।

हमें तन और मन दोनों से शक्तिशाली बनना होगा। तभी हम अपने लोकतन्त्र को सुरक्षित रख सकेंगे।

यह सदैव याद रखिये कि अगर मतदाता मूर्ख है, तो उसके प्रतिनिधि धूर्त होते होंगे। इसलिए सच्चे लोकतंत्र के लिए हमें मतदाताओं को राजनीतिक और सामाजिक चेतना देनी होगी।

: ४ :

निर्माण और प्रगति

हमारे देश में योजना का तीसरा अध्याय लिखा जा रहा है, जो अपने अन्तिम चरण के निकट है।

योजना को १४ वर्ष के लगभग होने जा रहे हैं। किसी भी देश के नव-निर्माण में इतने वर्ष कोई कीमत नहीं रखते। यह सम्भव नहीं है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था का मूल ढाँचा इतने समय में बदल जाय। यह आशा नहीं की जा सकती कि सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान इतनी अवधि में हो सकता है।

फिर भी इस समय निर्माण और प्रगति के तथा उसके परीक्षण के जो तथ्य उभर कर सामने आये हैं, वे अपने में स्पष्ट हैं। यह भी निस्संकोच कहा जा सकता है, प्रत्येक देशवासी के लिए जीवन-निर्वाह का साधन और अवसर की समानता दिलाने के प्रमुख उद्देश्य के प्रति पूर्ण सचाई और निष्ठा के साथ काम किया गया है।

देश की रीढ़

कुछ का ऐसा मत है कि देश की उन्नति औद्योगीकरण से ही हो सकती है। उनका ऐसा कहना है कि इससे उत्पादन कार्यक्रम को गति मिलेगी। उत्पादन का लागत खर्च कम होगा और जनता को प्रशिक्षण का अवसर प्राप्त होगा। समान वितरण होने के कारण गरीबी कम होगी।

कुछ का ऐसा मत है कि केवल उत्पादन के विषय में सोचने से ही समस्या का समाधान नहीं होता बल्कि उन लोगों को भी दृष्टि

से ओझल नहीं करना चाहिए, गांधी जी जिनके विषय में सदैव चिंतित रहे, वे हैं अत्यधिक निर्धन और दलित लोग, जो देश की रीढ़ हैं।

यदि किसी को समय के उतार-चढ़ाव के आगे अपने अस्तित्व को बनाये रखना है, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्दर स्वाभाविक शक्ति हो। जिसके अन्दर स्वतः स्फूर्त्त, प्रेरणा, आत्म-विश्वास नहीं होगा, वह बाहर से कितनी ही शक्ति-संग्रह करे, अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता।

यही नियम हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था के ऊपर पूरी तौर से लागू होता है। प्रश्न उठता है कि हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था कहां से शक्ति प्राप्त करती है। यदि प्राचीन काल से अब तक की अर्थ-व्यवस्था का विश्लेषण करें, तो यह बात साफ हो जायगी कि हमारी अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण उद्योग क्षेत्र ही रहा है। आज इससे भी कोई इनकार नहीं कर सकता कि हमारा यही क्षेत्र आज पीछे है। साधन-हीन, असंगठित और दुखी होने के बाद भी राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति का दो तिहाई और तीन चौथाई भाग वही पूरा करते हैं।

चार चीजों की जरूरत

इसलिए हमें पूरी गम्भीरता के साथ इस पर एक बार सोचना है। नेहरू ने औद्योगिक कांफ्रेंस में १८ दिसम्बर सन् १९४७ में कहा :

"—मैं जब हिमालय के नक्शे की ओर देखता हूँ और हिमालय की श्रेणियों को देखता हूँ, तो मैं इनमें खो जाता हूँ। हिमालय में कितनी शक्ति केन्द्रित है, जिसका पूरा उपयोग नहीं किया गया। उसका उपयोग करने पर पूरे हिन्दुस्तान की काया-पलट हो सकती है। यह एक अद्भुत शक्ति-केन्द्र है, शायद सारी दुनिया में सब से बड़ा यह हिमालय, उसकी पहाड़ियां, नदियां, ये खनिज। इसीलिए

में बड़ी-बडी नदियों की योजनाओं बांधों, पन बिजली और थर्मल शक्ति के केन्द्रों को अधिक महत्त्व देता हूं । ये योजनाएँ एक बार पूरी हुईं कि देश आप से आप आगे बढ़ेगा । पर इस शक्ति को बंध-मुक्ति करने से पहले हमें उसे नियंत्रित करना सीखना होगा, उसे ठीक से चलाना होगा ।'

इसके साथ ही उन्होंने कहा :

"आज भारत को चार चीजों की जरूरत है—इस्पात, बिजली, भारी मशीनें बनाने वाले उद्योग, प्रशिक्षित व्यक्ति । औद्योगिक युग में प्रवेश करने के लिए हमें भारी मेहनत करनी होगी। यह एक क्रांतिकारी बात है। समाज को समय के अनुसार बदलना ही पड़ता है। समाज का आर्थिक ढाँचा तो उम्र में बढ़ते हुए बच्चे की तरह होता है। उम्र के साथ-साथ कपड़ों को बड़ा करना पड़ता है। यदि ऐसा न किया गया, तो शरीर की तरह समाज बढ़ेगा, कपड़े फाड़कर भी बढ़ेगा ।"

बड़े पैमाने के उद्योग

'हिन्दुस्तान की समस्याएं' में जो सन् १६३६ में प्रकाशित हुई हैं, पण्डित नेहरू ने कहा है :

'—निजी तौर पर मैं बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास में विश्वास करता हूं । यह मुझे साफ दीखता है कि कुछ मुख्य और महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं, जैसे रक्षा उद्योग और जन-साधारण की भलाई के काम। ये बड़े पैमाने पर होने चाहिए। कुछ दूसरे उद्योग हैं, वे चाहे बड़े पैमाने पर हों या छोटे या घरेलू पैमाने पर। वर्तमान ढाँचा तो हिंसा और एकाधिकार पैदा करता है और सम्पत्ति को कुछ लोगों के हाथों में संचित कर देता है। बड़े उद्योग से अन्याय और हिंसा नहीं आती बल्कि प्रायवेट पूंजीवादी और धन लगाने वाले उनके दुरुपयोग से ऐसा करते हैं। यह सच है कि बड़ी मशीनें

सकता। घरेलू उद्योग अवकाश के समय के पूरक धंधों के रूप में नहीं, बल्कि स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में।"

कृषि का महत्व

तृतीय पंचवर्षीय योजना में कृषि को बहुत महत्त्व दिया गया है। उसमें कहा गया है कि—"खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना और उद्योग व निर्यात की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि-उत्पादन बढ़ाना—"यह हमारे लक्ष्यों में से एक है।"

हमारा देश खाने के लिए भी बाहर से अनाज मँगाए, यह बहुत ही लज्जा की बात है। पर अब इस ओर भी बहुत ध्यान दिया जा रहा है।

पण्डित नेहरू गांव की उपयोगिता और उसके महत्त्व से पूरी तरह परिचित थे और उसकी ओर उनका ध्यान था :

"—गांव में भारत की सबसे ज्यादा आबादी है—१०० में ८० आदमी गाँव में रहते हैं। इसलिए हमारे देश की तरक्की के लिए यह आवश्यक है कि गांवों के लोगों की उन्नति हो। इसलिए विकास योजनाओं का काम शुरू किया गया गांवों में, कम्युनिटी डिवेलपमेण्ट (सामुदायिक विकास) का ब्लाक्स (खण्डों) का। उससे बहुत लाभ हुआ और हमने बहुत कुछ सीखा। फिर हमने दूसरा सबसे बड़ा काम उठाया पंचायती राज्य का। उसी के साथ सहकारी समाज की भी बहुत चर्चा हुई और बहुत जगह वह कायम की गई हैं। ये पंचायती राज्य और सहकारी समाज दोनों मिलकर सारे देहात को, गांवों को बदल देंगे, यह मेरा विश्वास है।"

दफ्तरी काम

इसके आगे अमेरिका के कालेज का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा :

"—जिन मुल्कों में ज्यादा जोर टैक्नीकल शिक्षा पर देते हैं, वहाँ पर ज्यादा अच्छे इंजीनियर हैं। मुझे याद आता है कि दस वर्ष पहले मैं अमेरिका गया था। वहाँ एक कृषि कॉलेज में गया। जहाँ पर दो-चार हिन्दुस्तानी लड़के थे। वे कृषि सीखने गये थे। उनके प्रोफेसर ने उनसे गाय दुहने के लिए कहा। उन्होंने गाय दुहने का काम कभी किया नहीं था। यहां तो वे लैक्चरों के नोट लिखा करते थे। अमेरिका में भी खामियां हैं, ऐब हैं, लेनिक वे लोग दफ्तरी काम में फँसने वाले नहीं हैं। वहां पहले काम सिखाया जाता है, हाथ-पैर चलाना सिखाया जाता है। यहां बाबूगीरी सिखाई जाती है। इसलिए मैंने आपको वहां की मिसाल दी कि वहां पर पहले खेतों में काम करना सिखाया जाता है, गाय को दुहना वगैरह सिखाया जाता है। यहां पर तो गाय दुहने के लिए ग्वाला बुलाया जाता है और बाबू साहब ऊपर से खड़े-खड़े देखते हैं। यहां पर तो बाबू साहब किताब पढ़ते हैं। यह फर्क पड़ जाता है। इस ढंग को बदलना है, तो सारी शिक्षा का ढंग बदलना है, जिसमें ज्यादा प्रैक्टिकल काम हो।"

आर्थिक प्रणाली का ढांचा

कृषि और बड़े उद्योग यह अब दोनों ही आवश्यक हैं। इटली के अर्थ शास्त्री विल्फ्रेड पारेट ने कहा है—"आर्थिक दृष्टि से, विशेषकर विकास-काल में, बड़े उद्योग अत्यन्त आवश्यक हैं।"

देश की आर्थिक प्रणाली का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए कि पूंजी और उत्पादन के साधनों पर समाज का नियंत्रण हो। पहली पंचवर्षीय योजना में असमानता दूर करने की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। दूसरी योजना में इस प्रकार का खयाल रखा गया कि आय और पूंजी के वितरण में अधिक समानता लाई जाय। इसके साथ ही निजी बचतों और पूंजी निर्माण

में संभावित गिरावट को रोकने के सिद्धान्त में पहल की जाय।

दूसरी योजना का उद्देश्य था कि पूंजी निर्माण का ढाँचा निश्चित किया जाय, आर्थिक गतिविधि का उचित निर्देशन किया जाय, वित्तीय नीति को प्रभावशाली रूप दिया जाय, सामाजिक सेवाओं की उचित व्यवस्था की जाय, भूमि स्वामित्व में परिवर्तन किये जाएँ, कम्पनी प्रबन्ध सुधारा जाय, सहकारिता का निर्माण किया जाय।

यह समय है, जब हम गम्भीरता से देश के नव-निर्माण की समस्या पर विचार करें।

भारत की आजादी के लिए सन् १९३० में हमने एक प्रण किया था, लेकिन अभी उसका चौथाई भाग भी पूर्ण नहीं हुआ है। आर्थिक विकास ही इस पूर्णता की प्रमुख आधार शिला है। अब प्रश्न यह आता है कि हमारा यह आर्थिक विकास किस रूप में, किस ढँग से हो। क्या इसे कुछ लोगों तक ही सीमित कर दिया जाय। इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नहीं में है। किसी भी देश की सम्पन्नता इस बात से आंकी जायगी कि उस देश के जन-साधारणता का आर्थिक स्तर क्या है। आर्थिक विकास इस प्रकार से होना चाहिए कि सब समाज उससे प्रभावित हो।

देश की स्वतन्त्रता के बाद से ही राज्यों और केन्द्र का शासन-सूत्र कांग्रेस के हाथों में ही रहा है। इसलिए जनता का यह सोचना-समझना ठीक ही था कि अभी तक कांग्रेस ने जो घोषणाएँ की हैं, प्रस्ताव पास किये हैं, आश्वासन दिये हैं, उनको पूरा किया जायगा।

प्रगति की ओर

देश को समृद्धशाली बनाने के लिए ही योजनाएं शुरू की गईं।

रूरकेला, भिलाई, दुर्गापुर में इस्पात के विशाल कारखाने लगाये गये।

भाखड़ा—नंगल, नेवेली, दामोदरघाटी योजनाएँ।

अनेकों नहरें, बिजलीघरों आदि का निर्माण।

नूनमाटी और कैम्बे में तेल के अक्षुत स्रोत।

रेल के इंजन, जहाज, डिब्बे, मशीनरी आदि बनाने के कारखाने।

कहाँ तो हम सुइयाँ तक नहीं बना पाते थे और कहाँ आज कई चीजों में आत्म-निर्भर ही नहीं हो गये हैं बल्कि निर्यात भी करने लगे हैं।

जहाँ कृषि, उद्योग की दिशा में देश आगे बढ़ा है। वहाँ शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रगति की है।

आजादी के बाद कई विश्व-विद्यालयों की स्थापना की गई है। सैकड़ों की संख्या में कॉलिज, हजारों की संख्या में स्कूल खोले गये हैं। शिक्षा के अलावा उद्योग, कृषि, चिकित्सा सम्बन्धी प्रशिक्षण के लिए कॉलिजों की स्थापना की गई है। इंजीनियरिंग की दिशा में भी कई राज्यों में अनेक शिक्षणालयों की स्थापना की गई है।

अनुसंधान कार्य

इसके अलावा अनुसंधानों की दिशा में अनेक संस्थानों की प्रतिष्ठा की गई है। विज्ञान की प्रगति के लिए भी अनेक कदम उठाये गये हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए लगभग ३० राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई है। इन सब प्रयोगशालाओं का संचालन कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च करती है।

अभी तक राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और रक्षा प्रयोगशालाओं का आपस में सम्पर्क नहीं था—पर अब दोनों विभागों की संयुक्त समितियाँ बना दी गई हैं। इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि अनुसंधान की पुनरावृत्ति नहीं हो सकेगी।

तीन परमाणु बिजलीघरों की स्थापना की योजना है। इसमें

से तारापुर में एक बिजलीघर की स्थापना की जा रही है। इस बिजलीघर से ३० लाख ८० हजार किलोवाट बिजली पैदा होगी।

राजस्थान के राणाप्रताप सागर नामक स्थान में दूसरे परमाणु बिजली घर का भी कार्य शुरू किया गया है!

तीसरा बिजलीघर दक्षिण में किसी स्थान पर बनाया जायगा।

''—मैं हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बनने वाले नये-नये कारखानों, नयी-नयी चीजों और बिजली तथा हमारे खेतों की सिंचाई करने के लिए बनाई जा रही बड़ी-बड़ी बहुद्देश्यीय योजनाओं को देखता हूं। गांवों में तेजी से फैलती हुई सामुदायिक विकास और दूसरी राष्ट्रीय विस्तार सेवा-योजनाओं को भी देखता हूँ। यह हमारे देश की सबसे बड़ी घटना है। देहाती भारत का रंग-रूप, सैकड़ों कारखानों के बनने से नहीं बदलेगा, वह बदलेगा इन सामुदायिक विकास योजनाओं से। गाँव भारत की आत्मा है, हजारों सालों से भारत की बुनियाद हैं और इनमें महान् क्रान्ति हो रही है। जैसे-जैसे मैं इस विकास कार्यक्रम को देखता हूँ, मेरे सामने बदलते हुए हिन्दुस्तान का नक्शा घूम जाता है और मैं जोश से भर जाता हूँ, सिर्फ उन चीजों को देखकर नहीं, जिनको हम बना रहे हैं बल्कि उनके फलस्वरूप नया जीवन पाने वाले लाखों बच्चों, पुरुषों और स्त्रियों का खयाल करके।''

भारतीय आदर्श

पण्डित नेहरू के मन में भारतीय आदर्शों के प्रति श्रद्धा का उत्कट भाव था। उन्होंने कहा है कि 'सामुदायिक विकास योजनाओं को सरकारी कागजी कार्रवाई न रखकर जन-साधारण के निकट लाए।

''—मैं सोचता हूँ शायद ही कोई अन्य देश ऐसा हो—हालांकि मेरा अभिप्राय किसी देश का अपमान करने से नहीं है—जिसके आदर्श भारतीय आदर्शों के समान ऊँचे हों। और इस के साथ ही

मैं इतना और भी अवश्य कह दूं कि शायद ही कोई ऐसा अन्य देश भी हो, जहाँ सिद्धान्त और क्रिया में इतना अधिक अन्तर पाया जाय, जितना कि हमारे देश में पाया जाता है। मुझे लगता है कि बातें बहुत बड़ी-बड़ी करना और फिर भी अपने उद्देश्य के निकट न पहुँचना कुछ खतरनाक बात होती है। यह सोचना कि हमारे लक्ष्य बहुत ऊँचे हैं, इसलिए उन्हें कुछ नीचे ले आयें, यह मुझे कुछ ठीक नहीं जँचता। यह अलग बात है कि प्रयत्न करने पर भी आप अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त न कर पाये हों। आज हमारे सामने यही समस्या है कि किस प्रकार हम सामुदायिक विकास-योजनाओं को एक सरकारी कागजी कार्रवाई नहीं, अपितु सभी स्त्री-पुरुषों के काम की वस्तु बनाएं।"

सामुदायिक विकास

"—मेरा यह विश्वास रहा है और मैंने कई बार कहा भी है कि भारत में सामुदायिक विकास का सर्वाधिक महत्व है। मैंने इसे प्रत्येक अर्थ में क्रांतिकारी कहा है। यह मैंने इसकी कई त्रुटियों और असफलताओं को जानने के बाद कहा है। मुझे विश्वास है कि यह एक विशाल क्रांति ला रहा है, क्योंकि यह हमारे गाँवों के ३० करोड़ निवासियों की सामाजिक व्यवस्था को शांतिपूर्वक और प्रगतिशील उपायों से बदलने के चेष्टा कर रहा है। इस तरह जिन लोगों के जिम्मे इस आन्दोलन का काम है, उन पर भारी उत्तरदायित्व है। उनमें से प्रत्येक एक मशीन का पुर्जा मात्र नहीं है, बल्कि उस सबल और गतिशील प्रक्रिया का जीवित अंग है, जिसके द्वारा हम गाँवों और देहाती भारत को बदल रहे हैं।"

सहकारिता के द्वारा पुष्ट राष्ट्र को विश्व-शांति की स्थापना तथा रक्षा तक के लिए नेहरू उपयोगी मानते थे। उन्होंने कहा है :

"—हम लोग कठोर परिश्रम करेंगे और जीवन-स्तर उन्नत

करने के लिए सहकारी ढंग से आगे बढ़ेंगे। हम जिस प्रकार की समाज रचना की कल्पना कर रहे हैं, उसमें करोड़ों व्यक्तियों की निर्धनता न रहेगी। कल्पित समाज में प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने और विकास करने का समान अवसर मिलेगा। हम ऐसा समाज चाहते हैं जहाँ लोगों में अधिक भेद-भाव न रहे, न अधिक गरीब हों, न अधिक अमीर। वहाँ जातिगत भेदभाव भी न हों और लोग आपस में सहयोग से कार्य करें—अपने फायदे और मुल्क के फ़ायदे के लिए। उक्त राष्ट्र विश्व-शान्ति की स्थापना और विश्वशांति की रक्षा के लिए कार्य करेगा। स्पष्टतः ऐसा राष्ट्र प्रगति के जरिये ही बन सकता है और प्रगति कठोर श्रम और उत्पादन वृद्धि से ही होगी, न कि भीख माँगने से।"

पराधीनता का अभिशाप

यहां इस बात का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा कि अंग्रेजों के आने के समय हमारी व्यापारिक, औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी स्थिति क्या थी।

तेरहवीं सदी में मार्कोपोलो नामक एक विदेशी भारत में आया, उसने लिखा है :

"—मछलीपट्टम में सबसे उमदा और सर्वांग सुन्दर ऐसी मलमलें बनती हैं कि जैसी संसार के किसी देश में नहीं बनतीं।"

१७०८ में डेनियल फेलो ने एक लेख में लिखा था :

"—इंगलैंड का झुकाव पूर्व के बने हुए वस्त्रों की ओर है, हिन्दुस्तानी छींटें और छपे हुए कपड़े पहले फर्श आदि बनवाने के काम में ही आते थे, पर अब हमारी महिलाएँ इन्हें पहनने लग गई हैं···औरों की बात तो क्या इंग्लैंड की रानी हिन्दुस्तानी छींटें पहनना पसन्द करती है। इस वक्त चारों ओर हर घर में हिन्दुस्तानी कपड़ा नजर आता है।"

इसका नतीजा यह हुआ इतिहासकार विलसन के शब्दों में :

"—हिन्दुस्तान का सूती तथा रेशमी माल १८१३ तक ब्रिटेन के बाज़ारों में इंगलैंड के माल के मुकाबले में ५०-६० रुपया सैकड़ा कम मूल्य पर बेचा जा सकता था। विलायती माल की रक्षा के लिए ७०-८० रुपया सैकड़ा तक भारत के कपड़ों पर महसूल लगा दिया गया। अगर यह न किया जाता तो पेसले और मैंचेस्टर के कारखाने शुरू से ही बन्द हो गये होते। वे भारत की कारीगरी को विध्वंस करके ही खड़े किये गये हैं। यदि भारत स्वाधीन होता तो ब्रिटिश माल पर ज्यादा महसूल लगाकर इसका बदला चुकाता।"

शानदार निर्यात

मालाबार में क्यालिको छींट पर पहले तो तीन आने गज तक महसूल लगाया गया। इस पर भी जब काम न चला तो १७२० में इंगलैंड में कानून बनाया गया जो लोग विलायत में क्यालिको छींट बेचेंगे उन पर ३०० रुपया और जो खरीदेंगे, उन पर ७५ रुपया जुर्माना होगा।

कारीगरों पर भी महसूल लगाया गया। इस प्रकार अपना व्यापार बढ़ाने के लिए भारतीय उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया गया।

१७९४ में भारत में केवल १५६ पौंड से अधिक विलायती कपड़ा नहीं आया। जबकि १८३५ में ५१७७७२७७ गज कपड़ा आया और १९१८ में ६०५५४८००० रुपयों का कपड़ा आया।

मुहम्मद रजाखाँ के समय बंगाली जुलाहे ६ करोड़ बंगालियों की आवश्यकता पूरी करने के बाद १५ करोड़ रुपयों के कपड़े विदेशों को भेजते थे।

सारे संसार में जितना चावल पैदा होता था, उसका आधे से अधिक भारत पैदा करता था सन् १८ में ५६५०४००० मन चावल विदेशों को भेजा गया। गेहूँ प्रति वर्ष १३०८००० टन बाहर भेजा जाता था।

इसी प्रकार और भी कच्चा माल लाखों टन की तादाद में भारत से बाहर भेजा जाता था। पर अंग्रेज शासन की नीति ने हमारे उद्योग-धंधे को नष्ट कर दिया।

महल से सड़क पर

अंग्रेजों ने किस प्रकार शोषण करके हमें किस स्थिति को पहुँचा दिया यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये।

सर जॉन के ने कहा है : "जो लोग बड़े-बड़े भूमिखण्डों के मालिक थे, वे दीन-हीन दशा में झोंपड़ी में दिन काट रहे हैं।"

मि० आरविन ने लिखा है : "सैकड़े पीछे ७५ किसानों के घरों में बिस्तर तथा कम्बल नहीं हैं।"

भारत के नागरिक की औसत आमदनी अधिक-से-अधिक ३० रुपया प्रति साल कूती गई थी। लार्ड क्रोमर (भारत के अर्थ सचिव) ने १८८२ में औसत आमदनी २०) प्रति साल बताई थी। लार्ड कर्जन ने ३०) रुपया प्रति वर्ष और लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने जो स्टेट सेक्रेटरी थे १९०१ के अपने बजट में ३० रुपया वार्षिक बताई थी। विलियम डिग्वी ने जाँच-पड़ताल के बाद इसे केवल २७ रुपया वार्षिक ही स्वीकार किया था।

इससे यह स्पष्ट जाहिर है कि अंग्रेजों ने किस प्रकार भारत का शोषण करके उसे किस रूप में पहुँचा दिया था।

समुद्र पर एकाधिकार

इस लेख में इस प्रकार की चर्चा करने का मेरा केवल यही उद्देश्य है कि मैं उस भ्रांत धारणा को निर्मूल करूँ कि अंग्रेज़ों के आने के पहले भारतीय कुछ नहीं जानते थे।

जब अंग्रेज असभ्य थे, उस समय समुद्र की लहरों पर भारतीयों का व्यापक अधिकार था।

इसका नतीजा यह हुआ इतिहासकार विलसन के शब्दों में :

"—हिन्दुस्तान का सूती तथा रेशमी माल १८१३ तक ब्रिटेन के बाजारों में इंगलैंड के माल के मुकाबले में ५०-६० रुपया सैकड़ा कम मूल्य पर बेचा जा सकता था। विलायती माल की रक्षा के लिए ७०-८० रुपया सैकड़ा तक भारत के कपड़ों पर महसूल लगा दिया गया। अगर यह न किया जाता तो पेसले और मैंचेस्टर के कारखाने शुरू से ही बन्द हो गये होते। वे भारत की कारीगरी को विध्वंस करके ही खड़े किये गये हैं। यदि भारत स्वाधीन होता तो ब्रिटिश माल पर ज्यादा महसूल लगाकर इसका बदला चुकाता।"

शानदार निर्यात

मालावार में क्यालिको छींट पर पहले तो तीन आने गज तक महसूल लगाया गया। इस पर भी जब काम न चला तो १७२० में इंगलैंड में कानून बनाया गया जो लोग विलायत में क्यालिको छींट बेचेंगे उन पर ३०० रुपया और जो खरीदेंगे, उन पर ७५ रुपया जुर्माना होगा।

कारीगरों पर भी महसूल लगाया गया। इस प्रकार अपना व्यापार बढ़ाने के लिए भारतीय उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया गया।

१७९४ में भारत में केवल १५६ पौंड से अधिक विलायती कपड़ा नहीं आया। जबकि १८३५ में ५१७७७२७७ गज़ कपड़ा आया और १९१८ में ६०५५ ४८००० रुपयों का कपड़ा आया।

मुहम्मद रजाखाँ के समय बंगाली जुलाहे ६ करोड़ बंगालियों की आवश्यकता पूरी करने के बाद १५ करोड़ रुपयों के कपड़े विदेशों को भेजते थे।

सारे संसार में जितना चावल पैदा होता था, उसका आधे से अधिक भारत पैदा करता था सन् १८ में ५६५०४००० मन चावल विदेश को भेजा गया। गेहूँ प्रति वर्ष १३०८००० टन बाहर भेजा जाता था

इसी प्रकार और भी कच्चा माल लाखों टन की तादाद में भारत से बाहर भेजा जाता था। पर अंग्रेज़ शासन की नीति ने हमारे उद्योग-धंधे को नष्ट कर दिया।

महल से सड़क पर

अंग्रेजों ने किस प्रकार शोषण करके हमें किस स्थिति को पहुँचा दिया यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये।

सर जॉन के ने कहा है: "जो लोग बड़े-बड़े भूमिखण्डों के मालिक थे, वे दीन-हीन दशा में झोंपड़ी में दिन काट रहे हैं।"

मि० आरविन ने लिखा है: "सैकड़े पीछे ७५ किसानों के घरों में विस्तर तथा कम्बल नहीं हैं।"

भारत के नागरिक की औसत आमदनी अधिक-से-अधिक ३० रुपया प्रति साल कूती गई थी। लार्ड क्रोमर (भारत के अर्थ सचिव) ने १८८२ में औसत आमदनी २०) प्रति साल बताई थी। लार्ड कर्जन ने ३०) रुपया प्रति वर्ष और लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने जो स्टेट सेक्रेटरी थे १६०१ के अपने बजट में ३० रुपया वार्षिक बताई थी। विलियम डिग्बी ने जाँच-पड़ताल के बाद इसे केवल २७ रुपया वार्षिक ही स्वीकार किया था।

इससे यह स्पष्ट जाहिर है कि अंग्रेजों ने किस प्रकार भारत का शोषण करके उसे किस रूप में पहुँचा दिया था।

समुद्र पर एकाधिकार

इस लेख में इस प्रकार की चर्चा करने का मेरा केवल यही उद्देश्य है कि मैं उस भ्रांत धारणा को निर्मूल करूँ कि अंग्रेजों के आने के पहले भारतीय कुछ नहीं जानते थे।

जब अंग्रेज असभ्य थे, उस समय समुद्र की लहरों पर भारतीयों का व्यापक अधिकार था।

ऋग्वेद में (१।११६।५) सौ पतवारों से सुसज्जित जहाज का वर्णन है। महाभारत में कई स्थानों पर उल्लेख है। महावंश नामक बौद्ध इतिहास में लिखा है कि बंग निवासियों ने सिंहल द्वीप पर जल-मार्ग से आक्रमण किया था। सैकड़ों वर्षों तक भारत का पूर्व के समुद्रों पर एकाधिकार रहा।

भारत जहाजों का व्यापार भी करता था। तुर्की का सुलतान बंगाल के बने जहाजों को ही खरीदा करता था। ब्रिटिश जहाजी बेड़े के लिए भारतीय कारीगरों ने जंगी जहाज और पनडुब्बियाँ बनाई थीं।

१८०२ में शाही नौसेना के लिए बम्बई के कारखाने में जंगी जहाज बनाये गये।

१८२१ में ३७ हवाई जहाज बनाये गये। इंगलैंड उस समय हमारे बने जहाज खरीदता था जो मूल्य में कम और अंग्रेजी जहाजों से कई गुने मजबूत होते थे और अंग्रेजों ने इस उद्योग को नष्ट कर दिया।

आप इस बात से अन्दाजा लगा सकेंगे कि किस प्रकार इस उद्योग को समाप्त किया गया।

सन्	भारत में जहाज बने
१८५७	३४२०६
१९००	१६७३
१९०१	१०४९

और इसके बाद अंग्रेजों ने भारतीय जहाजी कारखानों में ताले डलवा दिये। भारत को हर क्षेत्र में दबाया गया और इसका नतीजा यह हुआ कि हम बिलकुल ही परवश हो गये। छोटी से छोटी वस्तु के लिए भी हमें विदेशों का मुँह ताकना पड़ता था।

स्वाधीनता के सूर्योदय के बाद ही देश ने अंगड़ाई ली। हम अपने खोये हुए गौरव को कब प्राप्त कर सकेंगे, यह तो अभी नहीं

कहा जा सकता, पर इतना जरूर है कि प्रगति और विश्वास की दौड़ में अपना भाग हम ईमानदारी से पूरा करने जा रहे हैं।

उपज दूनी हो

हमें कृषि की उपज को कम से कम दूना जरूर करना होगा। यदि ऐसा न हो सका, तो देश को पूरा आहार नहीं दिया जा सकता है। विदेशों से अन्न का आयात करके कब तक चलेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य और कृषि संगठन के सांख्यिकी विभाग के निदेशक डा० पी० वी० सुखात्मे (जो भारतीय हैं) ने वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कहा है कि संसार के दस व्यक्तियों में से ४ व्यक्ति भूखे हैं और उनमें से एक भारतीय है। उन्होंने कहा है कि भारत में पोषक आहार का स्तर २५ वर्षों में कुछ भी नहीं बढ़ा है।

यह ठीक है कि हर वर्ष एक करोड़ के हिसाब से भारत की आबादी बढ़ रही है, लेकिन उसी हिसाब से हमें उत्पादन बढ़ाने की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

नेहरू ने इस समस्या पर कहा है :

"—हजारों वर्षों के इतिहास का आप अध्ययन करें, तो आप पाएँगे किस तरह मनुष्य जाति ने धीरे-धीरे तरक्की की। उस समय खाने-पीने की कमी नहीं थी, लेकिन आबादी धीरे-धीरे बढ़ती गई और खाद्यान्न की आवश्यकता अधिक होती गई। आबादी किस हिसाब से बढ़ती गई, यह तो हम नहीं बता सकते, क्योंकि उस समय मर्दुमशुमारी नहीं होती थी। आज से दो हजार वर्ष पहले कितनी आबादी थी, इस विषय में कोई नहीं बता सकता। लेकिन यह निश्चित है कि वह लाखों में थी, करोड़ों में नहीं थी। उस समय हमारे लिए पूर्वजों के पास जमीन अधिक थी, खाने वाले कम थे। समाज के सामने खाद्यान्न का संकट नहीं था। लेकिन आज समाज

के सामने जो प्रश्न हैं, वे कठिन हैं। हमारी आबादी बहुत बढ़ गई। जमीन तो अधिक हुई नहीं। आबादी को कैसे रोका जाय, यह हमारे लिए बहुत बड़ी समस्या है। मेरा मतलब यह है कि समाज के बढ़ने से, बदलने से नये-नये प्रश्न उठते हैं और यदि नये प्रश्नों का जवाब नये तरीकों से न ढूंढा जाय, तो समाज तरक्की नहीं कर सकता। ये सब बुनियादी व सच्ची बातें हैं, जिन्हें हमें सोचना है और उसका मुकाबला करना है।

"—पहले आजादी के जरा ही पहले यह था ३३ वर्ष की उम्र हमारी औसत समझी जाती थी, अब करीब ५० के हो गई है, बावजूद इतनी आबादी बढ़ने के। क्या मानी हैं इसके ? इसके मानी यह नहीं हैं कि सब लोग ५० के होते हैं या ५० से ज्यादा के नहीं होते, लेकिन औसत यह है। इसके मानी यह हैं कि आबादी बढ़ने के बाद भी लोगों की सेहत ज़्यादा अच्छी है। क्यों सेहत अच्छी है ? इसलिए कि उन्हें खाना अच्छा मिलता है, पहले के मुकाबले में। पहले जो फाकामस्ती थी, वह अब नहीं है, आम तौर से नहीं है। सब से बड़ी सेहत है और उसके लिए खाना मिलना सब से जरूरी बात है। एक कौम को खाना मिले, कपड़ा मिले, रहने को घर मिले, उसके स्वास्थ्य का प्रबन्ध हो, उसकी पढ़ाई का हो और उसके काम का हो, ये सब बातें हैं! यह हमारा ध्येय, हमारा मक़सद है।"

नारी जागृत हो

निर्माण और प्रगति के इस दौर में पण्डित नेहरू भारतीय नारी को भी नहीं भूले, क्योंकि यह तो राष्ट्र की प्रगति की बुनियाद है।

"—जनता में जागृति फैलाने के लिए नारी को जागृत करना चाहिए। एक बार वह आगे बढ़ी तो परिवार आगे बढ़ेगा, गाँव आगे बढ़ेगा और सारा देश आगे बढ़ेगा। नारी के जागृत होने का अर्थ है, बच्चों की अच्छी शिक्षा। इस तरह इसे जगाकर हम आज के

बच्चों को जगा सकेंगे और आज के बच्चों के भावी भारत का निर्माण होगा।"

योजनाएँ

चौथी योजना हमारे सामने आ रही है। उसके मसौदे में कृषि को विशेष स्थान दिया गया है। छोटी सिंचाई योजनाओं के लिए जल के सर्वेक्षण का कार्य शुरू किया जा रहा है।

इस योजना में खेती की उपज बढ़ाने के लिए लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जिन कार्यक्रमों को अभी से लागू करने को कहा जा रहा है, वे इस प्रकार है।

सघन खेती कार्यक्रम की योजना, शिल्पिक संघों को मजबूत करना। कर्मचारियों को प्रशिक्षण, यंत्रों, औजारों की सूची, अच्छे बीज, पौधों की रक्षा, भूसंरक्षण, कुँओं-रहट की व्यवस्था, उर्वरकों, कीटाणु नाशक दवाओं के लिए कारखानों की क्षमता बढ़ाना।

परिवहन और संचार साधनों पर भी चौथी योजना में २० अरब रुपया खर्च किया जायगा। कोचीन में जहाज का एक नया कारखाना भी लगाया जायगा। सीमा के इलाकों में नियत रकम से ४ अरब ५० करोड़ रुपया अधिक सड़कें बनाने तथा उन्हें विस्तार देने में खर्च किया जायगा।

चौथी योजना समाप्त होते-होते देश भर में सड़कों, रेलों, संचार साधनों का जाल बिछ जायगा। ,देश का हिस्सा खुशहाली की ओर बढ़ेगा।

पर यह ध्यान रखने की बात है कि आज देश की जन संख्या ४५ करोड़ के लगभग है और तीन चार वर्षो में ही ५० करोड़ हो जायगी। उस समय अन्न की समस्या और भी विकराल रूप धारण करेगी।

हमारे देश में काफी कृषि योग्य भूमि है, विद्युत शक्ति भी

पर्याप्त न होने की शक्ल में विकसित हो सकती है. फिर यह समस्या हल की जा सकती है।

योजना आयोग के एक सदस्य ने कहा है कि चौथी-पाँचवीं योजनाओं के मुख्य लक्ष्य होंगे। प्रति परिवार (५ व्यक्तियों का) मासिक आय कम से कम १०० रुपया और काम करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को कुछ उपयुक्त व उपयोगी काम करने का अवसर मिल सकेगा।

इस सदस्य के अनुसार इस नई उपलब्धि का अर्थ सन् १९७५-७६ तक कुल अर्जित आय में ४० प्रतिशत की वृद्धि है। साथ ही उनका यह भी कहना है कि यह लक्ष्य बड़ा न होते हुए इसे पूरा कर सकना कठिन होगा।

स्थिति यह है कि आज से १२ वर्ष बाद भी (पाँच व्यक्तियों के परिवार की मासिक आय १०० रुपया होगी!) प्रति व्यक्ति की मासिक आय २० रुपया से अधिक की सम्भावना नहीं है।

आत्मनिर्भरता

पण्डित नेहरू के यह शब्द कितने मननीय हैं, जो उन्होंने देश के अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर न होने के बारे में कहे हैं :

'—आजादी के इतने वर्ष बाद भी खाद्य पदार्थों में आत्म-निर्भरता प्राप्त न करने की भारत की असफलता मेरे दिमाग को चीनी आक्रमण से भी ज्यादा परेशान कर रही है। जब मैं सोचता हूँ कि जिस राष्ट्र की ७० फीसदी आबादी खेती के काम में लगी हुई है, वह अपनी खुराक की जरूरतों के लिए विदेशों पर निर्भर करता है, तो मेरा सिर शर्म से झुक जाता है।"

कृषि तथा उद्योग दोनों ही हमारे देश के अर्थचक्र की धुरी हैं और इनमें से कृषि का स्थान अधिक है।

लेकिन जब हम ६२-६३ की कृषि रिपोर्ट उठाते हैं, तो पता

लगता है कि सन् ६१ की अपेक्षा २२ लाख टन उत्पादन कम हुआ है। इसके साथ ही दस करोड़ टन का उत्पादन का जो लक्ष्य था, उसमें ५० लाख टन की कमी रहेगी।

उद्योग के क्षेत्र में ११ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान किया गया था, लेकिन वहाँ की औसत वृद्धि केवल ७ प्रतिशत ही रही।

बिजली, परिवहन, कोयला तथा अन्य आधारभूत उद्योगों में देश ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। पर जहाँ तक इस्पात, खाद, मशीनी पुर्जे, सीमेंट, कपड़ा आदि का प्रश्न है, वहाँ हम पीछे हैं।

कपास, तिलहन, खाद्यान्न और यह उद्योग राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इनमें हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाये, इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ तीसरी योजना में राष्ट्रीय आय लक्ष्य ३० प्रतिशत घोषित किया गया था, वहाँ उसमें केवल २.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। प्रगति की यह गति निश्चय ही देश के लिए चिन्ता का कारण है।

उदरपूर्ति सबसे प्रमुख समस्या है। इसका हल सबसे पहला प्रयत्न होना चाहिए। देश कब तक भीख से क्षुधा शान्त करेगा। संसार में ऐसे कई देश हैं जहाँ केवल दस प्रतिशत लोग कृषि करते हैं उसी में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बाद निर्यात भी करते हैं। हम ७० फीसदी खेती में लगे हैं, फिर भी भूखे हैं।

इसका कारण यही है कि हमारे फैसले एयर कंडीशंड कमरों में बैठकर होते हैं। खेत और खलियानों तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती।

जरूरत इस बात की है कि प्रति एकड़ उपज बढ़ाने की ओर हम ध्यान दें। इसके लिए रासायनिक खाद, अच्छे स्वस्थ बीज तथा कृषि यंत्र किसानों को सहूलियत के साथ दिये जाएँ। होता यह है कि आवश्यक धन किसानों तक पहुँच ही नहीं पाता। इसके लिए कड़ाई की जरूरत है।

बेरोजगारी

इसके साथ ही एक और संकट देश के सामने हैं। १९६२ में बेकारों की संख्या १५.६ लाख थी तो ६३ में २४.८ लाख हो गई। बेकार शिक्षितों की संख्या १९६१ में ५.७ लाख थी सन् ६३ में ७.८ लाख हो गई।

देश के लिए यह सब चिन्ता के विषय हैं, लेकिन अगर सरकार सतर्कता और जागरूकता से इधर ध्यान दे, तो समस्याएँ देर-सबेर ही सही, हल हो सकती हैं। लेकिन जरूरत निष्ठा, लगन, साहस और सतर्कता की है।

इससे मैं इनकार नहीं करता कि देश आगे नहीं बढ़ा है, लेकिन उसे जिस तेजी से साधनों को देखते हुए बढ़ना चाहिए था, नहीं बढ़ा।

नये तीर्थ

पण्डित नेहरू ने नई योजनाओं को भारत के नये तीर्थ कहकर श्रम और साधना का सम्मान किया था। यह नये तीर्थ देश के हर कोने में हों और जन-साधारण सुखी हो, तभी हम नेहरू की उस भावना का सही मूल्यांकन कर सकेंगे।

: ५ :

कर्मयोग

"आराम हराम है।"

यह नया नारा कर्मयोगी नेहरू ने लगाया। यह नारा हजारों-लाखों वर्षों से भारतीय जन-मानस को अनुप्राणित करता रहा है, प्रेरणा देता रहा है और उसे आगे बढ़ाता रहा है।

महर्षि बाल्मीकि ने कहा था :

" —कर्म की कर्मठता को ज्ञान की अग्नि में कुंदन बनाने वाला ही पुरुषोत्तम कहलाता है।"

—संकल्प की कलम से जो साहस की परिभाषा लिखता है, भाग्य उसका सेवक बनकर रहता है।"

अगर हमारे संकल्प में दृढ़ता है, आत्मविश्वास है, तो संसार की कोई भी बाधा मार्ग की रुकावट नहीं बन सकती। श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। सफलता श्रमी के मस्तक पर स्वयं अपने हाथों से विजय-तिलक करती है।

सनातन सत्य

कगावा ने कहा है :

"—याद रखिये आपका अपना विश्वास ही प्रतिकूल परिस्थितियों के संकरीले और कंटकाकीर्ण पथ में निर्द्वन्द्व चलाने की क्षमता रखता है—लाखों प्रतिकूलताएँ भी मार्ग को अवरुद्ध किये हुए हों, कर्मयोगी का स्पर्श नहीं कर सकतीं। अपनी धुरी से उसे हिला नहीं सकतीं। चारों ओर से विरोध के बवण्डर उठ रहे हों,

सब कुछ प्रतिकूल ही दिखाई पड़ रहा हो। सम्पूर्ण आशा-दीपक तिरोहित हो गये हों। तब केवल आपका विश्वास ही आपको थामेगा, आपके पैरों को अडिग बनायेगा।

एक बार जब आपने डंके की चोट पर इस सनातन सत्य की घोषणा कर दी कि एकमात्र आपका भीतरी चैतन्य ही, चाहे आप इसे भगवान् कह लीजिये, आपका एकान्त भर्ता, निवास, शरण और साथी है और एक क्षण के लिए भी यदि आपने इस घोषणा को अपने भीतर उतार लिया, तो याद रखिये, कोई भी समुद्र ऐसा निःसीम नहीं, जिसको आप लाँघ न जाएँ। आप स्वयं अपनी अक्षय-निधि हैं—स्वयं अपनी अभय सुख-सरिता हैं। इस संकल्प के बाद भी अगर आप 'यह न हुआ' और 'वह न हुआ' के चक्कर में पड़े रहे और अपने समय को यों ही भगदड़ में व्यतीत करते रहे, तो आप अपने को कभी क्षमा नहीं कर सकेंगे।

इसका मतलब यह हुआ कि आप अपने स्वयं की अपेक्षा क्षण-भंगुर एवं तृष्णा ग्रस्त पदार्थों को अधिक महत्त्व देते हैं। दूसरे शब्दों में, आप जीवन के सनातन सत्य से विमुख हैं—मिथ्या और नगण्य को ही आराध्य मानकर उसके सामने श्रद्धा का अपव्यय करते हुए मस्तक टेक रहे हैं।"

धर्म बनाम कर्म

जहाँ-तहां धर्म का प्रश्न उठता है, तो धर्म क्या है। कर्म या कर्त्तव्य का ही तो दूसरा नाम धर्म है। यदि हमारी कर्मशक्ति और उत्साह बुझ गया है, तो हमारा धर्म खण्डित हो गया। हम क्या करेंगे। वह जाति, वह समाज, वह राष्ट्र कभी नहीं पनप सकता, जिसमें कर्मशक्ति नहीं है। जिस राष्ट्र के निवासी श्रम करने से कतराते हों, उसकी रक्षा तो भगवान् भी नहीं कर सकता।

कहा जाता है :

सागर को किसने बांधा है;
पर्वत को किसने लांघा है ।

दोनों ही कथन पूर्ण हो गये। सागर को भारतीय श्रम के प्रतीक नल और नील ने बांध लिया था। आज बड़े-बड़े बांध मनुष्य के श्रम की सगर्व घोषणायें करते हैं।

भारत-पुत्र तेनसिंह ने हिमालय की सबसे ऊंची चोटी पर श्रम की विजय-पताका फहरा दी। भगवान कृष्ण ने गीता में कर्मवाद का ओजस्वी संदेश दिया है।

हमें अपने को पहचानना चाहिए, अपनी शक्ति को पहचानना चाहिए और सुकर्म को ही धर्म मानकर कर्म की ओर अग्रसर होना चाहिए।

मनुष्य का गौरव : पुरुषार्थ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है पुरुषार्थ मनुष्य का गौरव है :

"—मानव जब श्रम करते-करते थक गया, तो उसने हारकर पृथ्वी माता से प्रार्थना की।

"—धरती मां तू इतनी कृपण क्यों है कि एड़ी-चोटी का पसीना एक करने बाद हमें अन्न देती है। भला तेरा कितना गौरव बढ़े, जो तू हमें बिना श्रम के ही अन्न दे दिया करे।"

धरती मुस्कराई—"अरे मनुष्य यह तो सच है कि मेरा इससे गौरव बढ़ जायगा, पर तेरा गौरव तो इससे सर्वथा ही लुप्त हो जायगा, क्योंकि तेरा गौरव तो तेरा पुरुषार्थ ही है।"

तो मनुष्य का सबसे बड़ा आभूषण उसका श्रम है। यही उसका श्रृंगार है। लोग काम की अधिकता की शिकायत किया करते हैं। कर्महीन लोग ही भाग्य को कोसते हैं और उन्हीं के पास शिकायतों का बाहुल्य होता है। गांधीजी ने उन्हें अच्छा उत्तर दिया है :

"—काम की अधिकता नहीं, अनियमितता मनुष्य को मार डालती है।"

कुछ लोग काम करते समय आलोचना और दोषारोपण करते हैं। उनके लिए धम्मपद का उपदेश है :

"—मनुष्य को चाहिए वह न तो दूसरों के दोष देखे और न यह देखें कि दूसरे क्या करते और क्या नहीं करते हैं। उसे अपने ही कृत-अकृत कर्मों को देखना चाहिए।"

विनोबा का विचार

आचार्य विनोबा भावे का कहना है कि जिन लोगों के बीच जिस प्रकार का कार्य हमें करना है, उसके अनुरूप हमें अपने को ढाल लेना चाहिए।

"—जिनकी सेवा करनी है, उनके जैसा ही रहो। गरीबों और मजदूरों की सेवा करनी है, तो शरीर श्रमवाला, सादा तथा गरीबी का जीवन जीना चाहिए।"

पंडित नेहरू ने आज उस कृषि छात्र को बुरा कहा है, जो बाबूगीरी में विश्वास करता है :

"—आज के कृषि छात्र को बाबूगीरी का स्वप्न छोड़कर खुद फावड़ा लेकर खेत में काम करने को तैयार होना पड़ेगा और दूसरे लोगों को अपने खेती-बाड़ी के ज्ञान और तरक्की की जानकारी का फायदा पहुंचाना होगा। वहां जाकर उन्हें बड़ा बनकर काम नहीं करना होगा और देश की उपज को बढ़ाना होगा। भारत की तरक्की इसके बिना मुमकिन नहीं।"

तरक्की की राह—श्रम

श्रम के बारे में पण्डित नेहरू के बिलकुल स्पष्ट विचार थे। उन्होंने कहा है :

"—किसानों को केवल भाषण देने से शिक्षित नहीं किया जा सकता। भारत और दूसरे देशों की प्रति एकड़ में जबर्दस्त फर्क है। हमें हिन्दुस्तान में अपनी उपज को दुगना या तिगुना करना है और तभी हमारा मुल्क खेती-बाड़ी में उन्नत हो सकता है। मगर यह तरक्की सिर्फ हमारे लोगों की मेहनत के जरिये ही मुमकिन है।"

कर्मयोगी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहता है। वह साहस नहीं खोता। बडे से बड़ा खतरा उठाने के लिए तैयार रहता है।

इस संदर्भ में एक कहानी है :

"—समुद्र के किनारे एक मल्लाह और एक साहूकार की लड़की शंख चुन रही थीं। समुद्र में तूफान उठ रहा था। मल्लाह की बेटी से न रहा गया। वह अपनी किश्ती समुद्र की हुंकारती हुई लहरों के बीच में ले जाना चाहती थी।

साहूकार की लड़की बोली—पागल है। मौत के मुंह में जाना चाहती है। तू उस नाव को ले जाना चाहती है, जो लहरों के आघात से गेंद के समान उछल रही है। क्या तुझे मौत का भी डर नहीं है।

मल्लाह की बेटी ने उत्तर दिया, "क्या लोग समुद्र में ही मरते हैं। चारपाई पर तो लोग इससे ज्यादा मरते हैं। समुद्र तो मेरा श्रम-क्षेत्र है। यही मुझे रोटी देता है। यदि इस प्रकार हम साहस को खो दें, श्रम से मुंह चुरायें, तो फिर जीवन कहाँ रहेगा।"

संस्कृति और कर्मयोग

कर्मयोग पर विचार करते समय हमें थोड़ा-सा उसके मूल में भी जाना पड़ेगा।

इस पर विचार करने के पूर्व हमें संस्कृति शब्द को देखना पड़ेगा, जो इसका आधार है।

'सम' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से भावतार्थ में क्तिन् प्रत्यय लगने से संस्कृति शब्द बनता है। इसका अर्थ है परम्परागत संस्कार।

बहुत से ऐसे विचारक हैं, जो सभ्यता और संस्कृति दोनों को एक अर्थ में ग्रहण करते हैं। पर दोनों में काफी अन्तर है और वह यह है कि सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान के आधार पर निर्भर करती है, जब कि संस्कृति अनुभवजन्य ज्ञान के आधार से अनुप्राणित होती है। अनुभव से जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह नित्य है, शाश्वत है और बुद्धि से जो ज्ञान उत्पन्न हो, वह परिवर्तनशील होता है। संस्कृति नित्य होती है और सभ्यता अनित्य। देश-काल की सभ्यता से अहित हो सकता है लेकिन संस्कृति सदैव हित-साधन ही करेगी। उससे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है।

सामान्य दृष्टि से हम संस्कृति को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) ईश्वर-प्रधान, (२) पुरुष-प्रधान, (३) प्रकृति-प्रधान ईश्वर प्रधान संस्कृति से तप-त्याग और सत्व गुण का बोध होता है।

पुरुष प्रधान संस्कृति से रजोगुण का बोध होता है।

प्रकृति-प्रधान संस्कृति में तमोगुण, मोह, भोग आदि की प्रचुरता रहती है।

संसार के दो भाग

हमारे देश की संस्कृति अनादि काल से ईश्वर प्रधान संस्कृति रही है। इसके द्वारा मनुष्य ऐहिक, पारलौकिक सुख पाकर सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

सम्पूर्ण संसार को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है।

(१) कर्म-प्रधान, (२) भोग-प्रधान।

भारत कर्म-प्रधान भूमि है। कर्म की उपयोगिता और उसके महत्व पर जितना बल भारतीय मनीषियों ने दिया है, उतना किसी देश या जाति के धर्म-ग्रन्थों में नहीं लिखा गया।

वेद के अनुसार—

"कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजीविषेच्छ तद्ध समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।"

—कर्म करता हुआ सैकड़ों वर्षों तक जीवन की कामना कर, इस प्रकार तू कर्म में अलिप्त रहकर मानव-जन्म को सार्थक कर सकता है। कर्म किये बिना मानव एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।

चेतना और कर्म

हमारा धर्म निष्काम भाव से कर्त्तव्य का आदेश देता है। वैराग्य अकर्मण्यता, संसार से उदासीनता के लिए उसमें गुंजायश नहीं है।

हमारी संस्कृति का सबसे प्रमुख तत्व परार्थ भाव है।

अंग्रेजी की एक सूक्ति में कर्म की सुन्दर व्याख्या की गई है।

I slept and found that life was beauty.

I woke and found that life was duty.

"—जब मैं सोया था, तो मैं समझता था कि जीवन सौन्दर्य है और जब मेरी चेतना से मुझे झकझोरा तो मुझे मालूम हुआ कि जीवन कर्त्तव्य है।

एक हीन भावना

और इसी कर्त्तव्य की आज हम उपेक्षा करने लगे हैं।

२३ जनवरी १९५५ को आवड़ी कांग्रेस में पण्डित नेहरू ने कहा :

"—दुर्भाग्य से हमारे देश में ऐसा रिवाज पड़ गया है कि शारीरिक श्रम को कुछ लोग बुरा और हीन मानते हैं। मानो यह निचली कही जाने वाली जातियों का काम है। मुझे शक है कि हिन्दुस्तान को इस मनोवृत्ति ने जितना नुकसान पहुंचाया है, वह शायद ही और किसी मनोवृत्ति ने पहुंचाया हो। पता नहीं कहां से यह

विचित्र धारणा हमारे मन में घर कर गई कि अपने हाथों से काम करना कुछ हलका काम है और उच्च वर्ग सिर्फ बौद्धिक और दिमागी काम जो कहलाता है, वही करे। यह धारणा अभी तक चली आ रही है। मैं कहता हूं यह बहुत बुरी और विषैली भावना है। इस तरह सोचने वाला कोई भी देश कैसे तरक्की कर सकता है। शारीरिक श्रम और मजदूरी का काम और कुछ नहीं तो शारीरिक विकास के लिए भी जरूरी है। मेरे मत से शरीर श्रम से अधिक ऊंचा बनाने वाली, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी कोई बात नहीं।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने नवनीत गीता में लिखा है।

"—कर्मयोगी संसार के कर्म धर्म दोनों को साथ लेकर चलता है। इसके लिए ज्ञान और व्यवहार में विरोध नहीं होता। कर्म जितना भी किया जाय, वह अपने में पूर्ण है, क्योंकि कर्मयोगी की दृष्टि कर्म पर रहती है, कर्म-फल पर नहीं। अतएव कर्मयोग में सदा ईश्वर की सत्ता के बल का अनुभव होता है, अभाव, विघ्न, निराशा का अनुभव नहीं होता। कर्मयोगी के सामने एक दृष्टि रहती है, वह सुनिश्चत कर्म की है।"

गीता का कर्मयोग

गीता में भगवान् कृष्ण ने कर्मयोग की व्याख्या इस प्रकार की है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतुर्भू र्माति संगोस्त्व कर्मणि

"—कर्म करना तुम्हारे अधिकार में है, लेकिन कर्म के फल प्राप्त करना तुम्हारे अधिकार में नहीं है। अतएव तुम कर्म के हेतु तो बन सकते हो, लेकिन कर्म-फल के हेतु नहीं बन सकते। तुम यथाशक्ति जितना कर्म कर सकते हो, वहां तक करो। उससे कम करने की

बात मन में मत सोचो। यदि इस प्रकार की भावना का मन में उदय हुआ, तो कर्म और फल दोनों से ही हाथ धो बैठोगे।"

भगवान् कृष्ण का यह कथन कर्मयोग का मूल सूत्र है।

पुरुषार्थ और भाग्य

महर्षि वेदव्यास ने कर्मयोग के बारे में काव्यात्मक शैली में कहा है :

"—पुरुषार्थ खेत है, भाग्य बीज है। उपजाऊ खेत में ही उत्तम बीज फलता है।

पुरुषार्थ पनिहारिन है, कुआ भाग्य है। पनिहारिन के श्रम से ही पानी मिलता है।

पुरुषार्थ पक्षी है, भाग्य फल है। श्रम से ही पक्षी पेड़ पर पका फल खाता है।

पुरुषार्थ किसान है, भाग्य खेती है। श्रम सींचकर किसान अन्न प्राप्त करता है।

पुरुषार्थ सूर्य है, भाग्य आकाश है। अंधेरा चीर कर ही सूरज प्रकाश फैलाता है।"

देश को नया रूप दें

कर्म-शक्ति को पण्डित नेहरू ने जागरूक रखा। निष्क्रियता को तो वह अपने पास फटकने भी नहीं देते थे।

जितना उनके मन में था। वह हमेशा यही सोचा करते थे कि मैं उतना कर नहीं सका।

उन्होंने कहा है :

"—मैं यह महसूस करता हूं कि बहुत कुछ करने की अपनी प्रबल इच्छा के बावजूद मैं अपनी कमजोरियों के कारण शायद बहुत कम ही कर सकूं। पर मैं और देश के सब जाग्रत युवक मिल

कर शायद बहुत कुछ कर सकें। अब तक लोगों ने मिलकर एक नया सबेरा देखने के लिए काम किया था, पर बदकिस्मती से अभी तक अंधेरी रात बाकी है और पता नहीं वह कब तक जारी रहेगी। राष्ट्रीय संघर्ष की अगली पंक्ति के हममें से बहुत से व्यक्ति शायद उस सबेरे को देखने के लिए न बचें। पर वह सबेरा एक दिन आयेगा जरूर। तब तक उसका रास्ता रौशन बनाये रखने के लिए हमें अपनी मशाल जलाये रखना है और मैं जानना चाहता हूं कि कितने साहसी बाजू मेरे थकते हुए हाथ से उस मशाल को ले लेने के लिए तैयार हैं ? मुझे उम्मीद है, वे अपने आपको इस विरासत के लायक बनायेंगे।

तो, आप लोग यह याद रखें कि अब आप इस महान् देश के रहने वाले हैं। यह सारा देश आपका है। खाली एक इलाका ही नहीं, यह सारा देश आपका है। जहां चाहें आप जा सकते हैं, काम कर सकते हैं, पढ़ सकते हैं, सीख सकते हैं, कारोबार कर सकते हैं। तो अब बहुत दिन बाद हम सब लोगों को, जो इस देश में रहते हैं, यह मौका मिला है कि हम सब मिलकर शान्ति से रहें और देश को तरक्की करने के लिए, उसे नया रूप देने के लिए, उसे सजाने-संभालने के लिए अपनी शक्ति और श्रम का उपयोग करें।"

संकीर्णता से उठें

उन्होंने आगे कहा है :

"—मेरी पीढ़ी एक बीतती हुई पीढ़ी है और शीघ्र ही हम भारत की प्रज्ज्वलित मशाल, जो कि उसकी महान् और सनातन आत्मा की प्रतीक है, युवा हाथों और सुदृढ़ बाहुओं को सौंप देंगे। मेरी यह कामना है वे उसे ऊपर उठायें और उसके प्रकाश को कम या धुंधला न होने दें, जिससे वह प्रकाश घर-घर में पहुंच कर हमारी जनता में श्रद्धा, साहस और समृद्धि उत्पन्न करें। हम सभी भारत

की चर्चा करते हैं और हम सभी भारत से बहुत बातों की आशा करते हैं। हम उसे उसके बदले में क्या देते हैं? जो कुछ हम उसे देते हैं, उससे अधिक हम उससे लेने के अधिकारी नहीं। भारत अन्त में हमें वही देगा, जो कि प्रेम और सेवा तथा रचनात्मक कार्य के रूप में वह उसे देंगे। भारत वैसा ही होगा, जैसे कि हम होंगे। हमारे विचार और कार्य उसे रूप प्रदान करेंगे। हम उनकी कोख से उत्पन्न बच्चे हैं, आज के भारत के छोटे-छोटे अंश हैं, साथ ही हम आने वाले कल के भारत के जनक हैं। हम बड़े होंगे, तो भारत बड़ा बनेगा और हम तुच्छ विचार वाले और अपने दृष्टिकोण में संकीर्ण बनेंगे, तो भारत भी वैसा ही होगा।"

और यह तमाशे

देश में जाग्रत की लहर जिस तेजी के साथ दौड़नी चाहिए, वह नहीं दौड़ी। श्रमदान ने सैकड़ों मील लम्बी सड़कों का निर्माण तो किया है, लेकिन यह निर्माण मंहगा पड़ा है। उस पर कहीं-कहीं इतना खर्च बैठा है, उतने में उससे दूना काम कराया जा सकता था।

श्रमदान भी चित्र खिंचाने और प्रचार का ही एक माध्यय बनकर रह गया है।

एक बार श्रमदान कार्य का पण्डित नेहरू को उद्घाटन करना था। उनको चांदी का फावड़ा दिया गया। उन्होंने उसे उठाकर फैंक दिया और एक श्रमदानी के हाथ से फावड़ा छीनकर काफी देर तक खुदाई करते रहे।

उस समय उन्होंने कहा—आप लोग श्रमदान के नाम पर तमाशा करते हैं। मजाक करते हैं, दिखावा करते हैं। जब तक यह सब होगा, तब तक देश तरक्की नहीं कर सकेगा। हमें इस गलत आदत को छोड़ना चाहिए।

जीवन का अंतिम ध्येय

एक महापुरुष ने कहा है :

"—हम अपराधी हैं, यदि हम सत्य नहीं कहते, हम अपराधी हैं, यदि अपना स्वरूप नहीं पहचानते; हम अपराधी हैं, यदि हम अपनी पहचान का लाभ अपने असंख्य जिज्ञासुओं तक नहीं पहुंचाते। चलने वालों के लिए पथ कहीं भी सिद्ध नहीं, विपथगाएं हमारा पथ नहीं मोड़ सकतीं; यदि हम खुद मुड़ने वाले तत्व के नहीं बने हैं। आज राजमार्ग पर घुटन है, फिसलन है। कल थी, कल भी रहेगी। धूल से हमारा रिश्ता है, फूल हमें धोखा देने को बने हैं। हमें पगडंडी पकड़नी है, तभी हम अपनी मंजिल तक पहुंचने की आशा रख सकते हैं। ऐसे पथिकों को विपथगाओं से कोई आशंका नहीं होनी चाहिए; क्योंकि पथ ही इनके कल्याण का दायित्व अपने ऊपर लेने वाला है।

मानव जीवन का अन्तिम ध्येय सुखमय समृद्धशाली और उन्नत जीवन है। प्राणी का शोषण नहीं, पोषण वांछित है। पशु अकेला रह जाता है, मनुष्य नहीं। अतः शान्तिपूर्व जिओ और दूसरों को जीने दो।

जागरूक कर्मयोगी

मनुष्य को अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहना चाहिए। पण्डित नेहरू जीवन के अन्तिम क्षणों तक कर्मयोग का कर्त्तव्य निभाहते रहे।

अपनी लिखने का मेज पर उन्होंने अपने हाथ से अमेरिका के कवि राबर्ट फ्रास्ट की यह पंक्तियां लिख रखी थी :

"—वन सुन्दर अंधकारमय तथा सघन है, किन्तु मुझे अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करना है, तथा निद्रा में लीन होने से पूर्व बहुत

लम्बा सफर तय करना है।"

कर्मयोगी न कभी थकता है न हारता है। यह तो जब तक अपनी मंजिल तक नहीं पहुंचता, तब तक उसे विश्राम कहां।

आज देश को बहुत श्रम की जरूरत है। वैदिक धर्म के सिद्धांतानुसार निष्काम कर्म करने वाले कर्मयोगी आगे आयें। उन्हीं के कन्धों पर यह भार है कि भारत के निर्माण के लिए कर्म-साधना करें।

भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति का आदर्श है निष्काम कर्मयोग।

हजारों-लाखों साल से ऋषि-मुनि इसका उपदेश देते आये हैं। राम हों या कृष्ण किसी भी परिस्थति में रहे हों, लेकिन उन्होंने कभी अपने कर्त्तव्य से मुंह नहीं मोड़ा।

नेहरू की धरोहर

नेहरू ने आज देश को जो धरोहर सौंपी है, वह किसी के भोग के लिए नहीं है। बल्कि उसका उपयोग राष्ट्र की अर्चा के लिए है। इसका उपयोग देश के विकास और उसकी शक्ति संपन्नता के लिए किया जाना है।

इस समय नेहरू जन शक्ति और श्रम का समन्वय करने की दिशा में तीव्रता से प्रयत्न कर रहे थे। इस समय समन्वय का यह कार्य और भी तेजी से होना चाहिए। अशक्तता और अकर्मण्यता किसी प्रकार भी सहन नहीं होगी।

आज जन-शक्ति का आत्म-निर्भरता के लिए उपयोग होना है।

परोन्मुखता अशक्ति को जन्म देती है और आत्म-निर्भरता एक ऐसी शक्ति को, जिसके सामने कोई ठहर नहीं सकता।

नेहरू ने आत्म-विश्वास और कर्मयोग का जो पाठ दिय है, हम उसे अपने जीवन में उतारें। यह दायित्व जहां सरकार का है,

वहां जनता का भी है।

हमें चाहिए कि हमारा कर्मयोग देश को नया जीवन दें, नयी गति दें। हमारा महान् और शानदार देश अपने पैरों पर खड़ा होकर संसार के दुख-दर्द में हिस्सा बटाये।

: ६ :

समाजवाद

समाजवाद हमारे देश के लिए कोई नवीन विचारधारा या प्रयोग नहीं है। विविध शासन प्रणालियां और समाज रचनाओं के अनेक प्रकार के प्रयोग यहां हुए हैं। अनेकता में एकता की सच्ची झलक अगर किसी देश में देखने को मिल सकती है, तो वह भारत ही है।

कोई भी देश हो, उसमें एक प्रकार की समाज रचना युगों तक नहीं चल सकती—परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है।

हमारे देश में गणराज्य जनपदीय थे। रामायण और महाभारत के समय से लेकर सम्राट् अशोक के शासन काल तक गणराज्यों का अस्तित्व और संवैधानिक महत्व रहा है। यह प्राचीन गणराज्य कई प्रकार की शासन-प्रणालियों द्वारा संचालित होते थे।

शासनतन्त्रों का प्रकार

वैदिक इतिहास में १३ प्रकार के शासनतंत्रों की चर्चा मिलती है। **ऐतरेय ब्राह्मण** के अनुसार

> **स्वस्ति साम्राज्यं, भौज्यं, स्वराज्यं, वैराज्यं**
> **पारमेष्ठ्यं, राज्यं महाराज्यं आधिपत्यं**
> **सामंतपर्यायी स्यात सार्वभौमः सर्वायुषांतादा परार्धात्।**
> **पृथिव्यं समुद्रपर्यन्ताया एक राष्ट्र इति॥**

—इस श्लोक में ९ प्रकार की शासन प्रणालियों की चर्चा है। इनके अतिरिक्त वेदों में चार और शासनप्रणालियों का जिक्र है।

(१) जानराज्यं, (२) विप्रराज्यं, (३) समर्थ राज्यं (४) अधिराज्यं।

साम्राज्य—चक्रवर्ती राज्य अर्थात् अनेक राज्यों और देशों के राजा एक सम्राट के द्वारा शासित हों। जैसे--ब्रिटिश साम्राज्य।

भोज्य—शासन प्रणाली में शासक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह प्रजा के भोजन, निवास आदि आवश्यकताओं की पूर्ति करे। जैसे साम्यवादी शासन।

स्वराज्य—जहाँ शासन बहुमत की राय से संचालित हो। इसे लोकतन्त्रीय शासन कह सकते हैं।

वैराज्य—यह अपने ढंग की अनोखी शासन-व्यवस्था है। समाज इतना उन्नत हो जाता है कि उस पर किसी प्रकार का बंधन लगाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस व्यवस्था में राजा और प्रशासक की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

पारमेष्ठ्य—राज्य में सम्पूर्ण सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में दे दी जाती है।

राज्य—यह एक ही शासक द्वारा संचालित व्यवस्था है।

महाराज्य—अनेक प्रकार के राज्यों को जब अपने में मिला लिया जाता है तब वह एक बड़े शासक द्वारा शासित होते हैं। इसे संघ-राज्य भी कहा जा सकता है।

आधिपत्य—जब सेना शासनतन्त्र पर अधिकार कर लेती है। जैसा कि आजकल बर्मा, पाकिस्तान और ईराक में है।

सामतपर्यायी—जब शासन व्यवस्था छोटे-छोटे राजाओं, ताल्लुकेदारों तथा सामंतों के हाथ में होती है।

हमारे देश ने स्वराज्य वाली व्यवस्था को पसन्द किया है। जिसमें जो कुछ भी निर्णय होंगे, वह बहुमत की राय से होंगे और शक्ति जनसाधारण के हाथ में केन्द्रित होगी।

बुनियादी आवश्यकताएं

भारत ने अपना लक्ष्य समाजवाद घोषित किया है; पर हमारा यह समाजवाद लोकतांत्रिक समाजवाद होगा; जो लोकतन्त्रीय तरीके से धीरे-धीरे लाया जायगा।

समाजवाद की जो रूपरेखा कांग्रेस ने निर्धारित की है। उसमें जन-साधारण की पाँच बुनियादी आवश्यकताओं पर बल दिया गया है।

भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा, स्वास्थ्य।

लोकतन्त्रीय समाजवाद के रूप में एक ऐसा समाज निर्माण करने की कल्पना की गई है कि जिसमें गरीबी और अशिक्षा को पूरी तौर से खतम कर दिया जायगा। कांग्रेस की विचारधारा का आधार लोकतन्त्र, मानव प्रतिष्ठा तथा सामाजिक न्याय को बताते हुए कहा गया है; केवल भौतिक उन्नति से मानव जीवन सुखी और सार्थक नहीं हो सकेगा। यह आवश्यक है कि इसके साथ-साथ नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की भी बढ़ोतरी की जाय। इससे मानव-चरित्र के साथ-साथ साधनों का भी विकास होगा।

तीन अंग

समाजवाद तीन अंगों की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करता है।

(१) भौतिक समृद्धि (२) वैयक्तिक स्वतन्त्रता (३) नैतिक मूल्य।

सजाजवाद गरीबी का वितरण नहीं करता बल्कि वह तो सब के कल्याण के लिए मार्ग खोलता है। समाजवाद आर्थिक विकास के लिए जितना उपयोगी है, उतना ही सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास के लिए।

लोकतन्त्र का अगर सामान्य रूप से अर्थ लिया जाय तो बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय होता है।

जनता के द्वारा चुनी गई, जनता की भलाई के लिए, जन-सरकार को ही समाजवादी सरकार के रूप में लिया जा सकता है। सम-अज—सब को बिना किसी भेद-भाव के अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने की सुविधा हो। इसके साथ ही व्यक्ति की योग्यता के अनुसार उससे काम लिया जाय। यह दो सिद्धान्त हैं जिनकी घोषणा कांग्रेस सरकार ने की है। इन दोनों सिद्धान्तों में न कहीं विरोधाभास की झलक मिलती है और न टकराव का भय है।

लोगों की ऐसी धारणा है, साम्यवादी देशों की रीति-नीति ने, जिसे और पुष्ट किया है—समाजवाद और साम्यवाद का जन्म वर्ग-युद्ध से होता है। वर्ग-युद्ध का पाश्चात्य रूप तो यही है कि उसमें वर्ग-विद्वेष है। एक वर्ग दूसरे का अस्तित्व सहन ही नहीं कर सकता।

नयी व्यवस्था

लोकतांत्रिक समाजवाद के बारे में कांग्रेस कर्मियों का ऐसा खयाल है कि पूँजीवादी तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं से यह अच्छी व्यवस्था है।

लोकतन्त्र में राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता पर बल दिया जाता है।

समाजवाद से जिसे कम्यूनिज़्म के अर्थ में भी प्रयोग करते हैं आर्थिक न्याय पर जोर देते हैं और इसमें राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के मूल्यों की उपेक्षा की जाती है।

कांग्रेसकर्मियों की दृष्टि में यह दोनों ही व्यवस्थाएँ भारत के लिए उपयुक्त नहीं हैं। क्योंकि इनमें आर्थिक स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता का समन्वय नहीं है। इसलिए दोनों को मिलाकर एक नयी लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था का प्रयोग किया जा रहा है।

पण्डित नेहरू ने **हिन्दुस्तान की समस्यायें** में कांग्रेस और समाजवाद लेख में कहा है :

"—समाजवाद इससे और आगे जाता है। उसका ध्येय है पूंजी-वाद की लाश पर निर्माण।

(१५ जुलाई सन् १९३६)

समरस होना चाहिए

मेरी कहानी में हिन्दुस्तान—पुराना और नया लेख में पण्डित नेहरू ने नयी व्यवस्था का जिक्र किया है :

"—हमारी पुरानी संस्कृति ने बहुतेरे भीषण तूफानों और बवंडरों में भी अपने को जीवित रखा है, लेकिन यद्यपि उसने अपना बाहरी रूप कायम रख छोड़ा है, फिर भी वह अपना भीतरी असली सत्व खो चुकी है और अब वह चुपचाप जी-जान लगाकर एक नयी और सर्वशक्तिमान प्रतिद्वन्द्विनी पश्चिम की बनिया संस्कृति से लड़ रही है। वह इस नवागन्तुका संस्कृति से परास्त हो जायगी क्योंकि पश्चिम के पास विज्ञान है और विज्ञान लाखों लोगों को भोजन देता है। मगर पश्चिम इस एक-दूसरे का गला काटने वाली सभ्यता की बुराइयों का इलाज भी साथ लाया है—साम्यवाद का, सहयोग का, सब के हित के लिए जाति या समाज की सेवा करने का सिद्धान्त। यह भारत के पुराने ब्राह्मणोचित सेवा के आदर्श से बहुत भिन्न नहीं है; लेकिन इसका अर्थ है तमाम जातियों, वर्गों और समूहों को ब्राह्मण बना देना (अवश्य ही धार्मिक अर्थ में नहीं) और जातिभेद को मिटा देना। हो सकता है कि जब भारत इस लिबास को पहनेगा, और वह जरूर पहनेगा, क्योंकि पुराना लिबास तो चिथड़े-चिथड़े हो गया है, तो उसे उसमें इस तरह काट-छाँट करनी पड़ेगी, जिससे वह मौजूदा अवस्थायें और पुराने विचार दोनों का मेल साध सके। जिन विचारों को वह ग्रहण करे, वे अवश्य उसकी भूमि में समरस हो जाने चाहिए।"

व्यवस्था बदलनी होगी

आगे पण्डितजी ने विकट समस्यायें लेख में कहा है :

"—अनिवार्य रूप से हमारे पास सिर्फ एक ही सम्भव उपाय रह जाता है और वह है समाजवादी व्यवस्था की स्थापना। यह व्यवस्था पहले राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर स्थापित होगी, फिर कालांतर में समस्त संसार में व्याप्त हो जायगी। इस व्यवस्था में सम्पत्ति का उत्पादन और बँटवारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से और जनता के हाथों से होगा। यह कार्य कैसे हो, यह दूसरा सवाल है लेकिन इतनी बात साफ है कि जिन थोड़े-से लोगों को मौजूदा व्यवस्था से फायदा पहुँचता है, वे उसे बदलने में ऐतराज करते हैं, तो हमें केवल उनके खयाल से अपने राष्ट्र या मनुष्य-जाति की भलाई का काम नहीं रोकना चाहिए। अगर राजनैतिक या सामाजिक संस्थाएँ इस प्रकार के परिवर्तन में विघ्न डालती हैं, तो उन संस्थाओं को मिटाना होगा। इस बांछनीय और व्यावहारिक आदर्श को तिलांजलि देकर संस्थाओं से समझौता करना सरासर गद्दारी होगी।"

कानून से नहीं होगा

आगे पण्डित नेहरू ने कहा है :

"—वर्तमान व्यवस्था बदलने के उपाय पर विचार करते समय हमें भौतिक और नैतिक दृष्टि से उसकी उपयोगिता का भी विचार करना होगा। बहुत संकुचित दृष्टि बनाये रखने से काम नहीं चल सकता—हमें दूरदर्शी बनना होगा। हमें देखना होगा कि इस परिवर्तन से, भौतिक और नैतिक दृष्टियों से, मनुष्य को सुख-समृद्धि की वृद्धि में कहाँ तक सहायता मिलेगी।

यह साफ है कि समाजवाद जो महान् परिवर्तन लाना चाहता है, वह कुछ कानूनों को सहसा पास कर लेने मात्र से ही नहीं हो

सकता । लेकिन और आगे बढ़ने और इमारत की नींव रखने के लिए कानून बनाने की मूलसत्ता का हाथ में होना जरूरी है। अगर समाजवादी समाज का निर्माण करना है तो भी वह न तो भाग्य के भरोसे छोड़ा जा सकता है और न रुक-रुक कर, जितना कुछ बनाया गया है; उसे तोड़ने का अवसर देते हुए, काम करने से वह पूरा हो सकता है। हमारा उद्देश्य किसी को वंचित करना नहीं; वरन सम्पन्न करना है, वर्तमान दरिद्रता को सम्पन्नता में बदल देना है। लेकिन ऐसा करने के लिए रास्ते में उन सब रुकावटों और स्वार्थों को, जो समाज को पीछे रखना चाहते हैं, जरूर ही हटाना होगा और जो रास्ता हम अपना रहे हैं, वह सिर्फ व्यक्तिगत रुचि अथवा अरुचि अथवा सैद्धान्तिक न्याय के प्रश्न पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर निर्भर है कि वह आर्थिक दृष्टि से ठीक है, उन्नति की तरफ ले जाने योग्य है और उससे अधिक-से-अधिक जन-समाज का कल्याण होगा।

स्वार्थों का संघर्ष अनिवार्य है। कोई बीच का रास्ता नहीं है। हममें से हर एक को अपना रास्ता चुनना होगा। लेकिन चुनने से पहले हमें उसे जानना होगा, समझना होगा। समाजवाद की भावुकतापूर्ण अपील से काम नहीं चलेगा। अगर भारत में समाजवाद की रचना होती है, तो वह भारतीय परिस्थितियों के आधार पर ही होगी और इसके लिए उनका बारीकी से अध्ययन होना आवश्यक है।

राज्य और समाज

हर देश का अपना एक ढंग होता है। योरोप के लोग राज्य के द्वारा अपनी प्रतिभा को व्यक्त करते हैं, जबकि भारत समाज के माध्यम से अपनी बात कहता है। स्पष्ट तौर से इसे यों कहा जा सकता है कि योरोप की प्राण-शक्ति राज्य-निहित है और भारत की

प्राणशक्ति समाज निहित है ।

योरोप की प्रगति, उसके विकास और निर्माण का आधार राज्य की शक्ति और उसकी स्थिरता है परन्तु हमारे देश की उन्नति सामाजिक संगठन की शक्ति के साथ जुड़ी हुई है ।

यदि भारत विज्ञान और आर्थिक दृष्टि से कम विकसित है, तो उसका मूल कारण केवल यही है कि सामाजिक संगठन की अस्त-व्यस्तता से हमारे सांस्कृतिक स्तर में गिरावट आई है ।

आज जरूरत इस बात की है कि हम समाज को स्वतन्त्रता और समानता के मूल्यों पर आज के मानव की भावना के अनुकूल आधारित करें । इसके साथ-ही-साथ हमें सामाजिक सुरक्षा के पुराने मूल्यों को भी सुरक्षित रखना होगा ।

सादा जीवन और उच्च विचार वाला भारतीय सिद्धान्त आज दिखाऊ जीवन और निम्न विचार पर उतर आयाहै । हमें इसको फिर उसी पुराने सिद्धान्त पर लाना है । जब जन-साधारण के मन में विज्ञान ओत-प्रोत हो जायेगा, तभी समाज उसका पूरा लाभ उठा सकेगा ।

राजनैतिक लोकतंत्र

राजनैतिक लोकतन्त्र की बुनियाद मजबूत करने के लिए देश में अनेक संस्थाओं की नींव डाली जा चुकी हैं। उदाहरण के लिए राजनीतिक दलों का अस्तित्व, अखबारों की स्वतन्त्रता तथा न्याय शासन का स्वतन्त्र होना आदि ।

हमारी शासन-पद्धति तो ठीक है लेकिन अभी सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि उसमें अनुशासन और त्याग का पूरी तौर से समावेश किया जाय ।

मानवीय और भौतिक दोनों प्रकार के साधन जुटाने के लिए एक ऐसी योजना बनाने की जरूरत है, जिसका जन-साधारण के साथ सीधा सम्पर्क हो । हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था मिश्रित है ।

जहां तक इस मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रश्न है फ्रांस, इंग्लैण्ड, स्कैण्डेनेविया आदि देशों में इसका प्रयोग सफल रहा है। इस व्यवस्था का इन देशों में विकास होने में शताब्दियों का समय लगा है। भारत में इस व्यवस्था के लिए एक स्थिर आधार की अभी तक खोज नहीं की जा सकी है। हमारे देश के निजी क्षेत्रों के सम्बन्ध में जनता और दलों की राय कुछ अच्छी नहीं है। क्योंकि निजी क्षेत्र शोषण और लूट के खुले अड्डे हैं। जब तक इन निजी क्षेत्रों को मनमानी करने का अधिकार रहेगा, तब तक लोकतंत्रीय समाजवाद की सफलता के लिए यह खतरा ही बने रहेंगे।

निजी क्षेत्र

अभी तक ऐसी कोई सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकी है, जो निजी क्षेत्रों और सरकारी क्षेत्रों को अलग कर सके। यह आवश्यक है कि निजी क्षेत्रों पर सरकार का कठोर नियंत्रण हो और उन्हें इसके लिए बाध्य किया जाय कि वह ईमानदारी और कार्य-क्षमता का एक स्तर कायम करें। यह सही है कि आज उनमें ईमानदारी और कार्य-कुशलता का अभाव है।

यह समझने की जरूरत है कि निजी क्षेत्रों को अपने में अविलम्ब सुधार करना चाहिए। क्योंकि समाजवाद के प्रचार के कारण जनता में समता की भावनाओं का उदय हुआ है और उसकी मनःस्थिति में भी बहुत फर्क आया है। इसलिए निजी क्षेत्रों को सोच-समझकर, ईमानदारी से कार्य करने की जरूरत है, क्योंकि जन-मानस अब अधिक विपन्नता और विषमता की स्थिति में रहने को तैयार नहीं है। कभी भी वह उबल सकता है और उसके रोष का सागर निजी क्षेत्रों को डुबा सकता है।

गांधीजी स्वयं लोकतंत्रवादी थे। निजी क्षेत्रों को वह मित्रता की दृष्टि से देखते थे, परन्तु उन्होंने भी अनुभव किया था कि अगर

निजी क्षेत्रों को जीवित रहना है और उन्हें चाहिए कि वे जनता के ट्रस्टी के रूप में कार्य करें।

सरकारी क्षेत्रों के पीछे राज्य-शक्ति तो पूरी तौर से है ही, थोड़ा-बहुत तो सहयोग भी है और यह भी जरूरी है कि सरकारी क्षेत्र के अन्दर आर्थिक और उत्पादन कार्यक्रम चलाया जाना अनिवार्य है, लेकिन इसके माने यह नहीं हैं कि उत्पादन-स्तर की क्षमता के उच्च-स्तर को कम समझा जाय। इस प्रकार के वातावरण का बनाया जाना समग्र विकास के लिए जरूरी है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ममता की भावनाओं का जागरण हो चुका है। जन-साधारण उसके महत्त्व को समझ चुका है। पुरातन व्यवस्था की जड़ें कमजोर हो चुकी हैं, लेकिन अभी तक ऐसी व्यवस्था का उदय नहीं हुआ है, जिसमें स्थिरता हो। गांवों में लोकतंत्र और समाजवाद को कठिन परीक्षाओं और संकटों के चक्रव्यूह से गुजरना पड़ रहा है। इसका कारण यह है कि जमींदारियों को तो समाप्त कर दिया गया है लेकिन उसकी भावना अभी तक ज्यों-की-त्यों हैं।

समाजवाद कैसे

१७ जनवरी सन् १९३६ में पण्डित नेहरू ने लार्ड लोथियन को एक पत्र लिखा था। जिसमें यह बताया था कि समाजवाद किस तरह से आ सकता है।

"—समाजवाद कैसे आयेगा ? आप कहते हैं बंटवारे और पैदावार के साधनों का पूरा राष्ट्रीयकरण करके इस मंजिल तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसके लिए क्या यह जरूरी नहीं है कि निजी मुनाफे के क्षेत्रों को सहकारी पद्धति में बदल दिया जाय। इसके लिए क्या यह आवश्यक नहीं है कि मौजूदा सभ्यता की बुनियाद से हटकर एक नई सभ्यता का सूत्रपात किया जाय ? हो सकता है कि निजी प्रयत्नों के लिए काफी क्षेत्र छोड़ दिया जाय, सांस्कृतिक जैसे

क्षेत्र तो छोड़ ही दिये जाने चाहिए। लेकिन सच्चे अर्थों में, बंटवारे और पैदावार के साधनों का राष्ट्रीयकरण बहुत जरूरी है। सरकारी और गैर सरकारी दोनों प्रतिष्ठान हो सकते हैं, मगर एक दूसरे के विरोधी और उल्टे ढर्रे पर साथ-साथ नहीं चला जा सकता। रास्ता चुनना ही पड़ेगा और समाजवाद में यकीन करने वाले किसी भी आदमी के लिए एक ही रास्ता है।

मेरे खयाल में सिद्धान्त में लोकतांत्रिक ढंग से समाजवाद लाया जा सकता है, बशर्ते कि पूरी लोकतांत्रिक सहूलियतें मिल सकें। अमल में, इस रास्ते में बहुत-सी रुकावटें आ सकती हैं, क्योंकि जब समाजवाद के दुश्मन अपनी ताकतें छिनती हुई देखेंगे, तो वे लोकतांत्रिक तरीके को खत्म कर देंगे। समाजवादियों की ओर से नहीं बल्कि दूसरी ओर से लोकतंत्र का खात्मा किया जा सकता है और यही फासिज्म है। इसलिए रुकावट को कैसे दूर किया जाय? लोकतन्त्र के तरीके ने बहुत-सी कामयाबियां हासिल की हैं मगर मुझे यह नहीं मालूम कि इससे किसी देश या समाज का बुनियादी ढांचा बदल गया है।"

सब समस्याओं का हल

संसार की समस्त समस्याओं का हल पण्डित नेहरू समाजवाद को ही मानते थे। उन्होंने मेरी कहानी में लिखा है:

"—मुझे यकीन है कि समाजवाद से ही दुनिया की सारी समस्याओं को हल किया जा सकता है और मैं इस शब्द का इस्तेमाल गोलमोल मानवतावादी अर्थों में नहीं बल्कि इसके वैज्ञानिक आर्थिक अर्थों में करता हूँ। गरीबी, हद दर्जे की बेकारी, भारतीय जनता के रहन-सहन के स्तर में गिरावट और गुलामी जैसे मसलों का हल समाजवाद से ही मुमकिन है। इसके लिए यह जरूरी है कि हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे में काफी बड़े पैमाने पर

क्रांतिकारी परिवर्तन किये जायँ, जमींदारों और मिल-मालिकों के साथ ही राजा-नवाबों को खत्म कर दिया जाय। इसका मतलब यह है कि बहुत ही थोड़ी जायदाद को छोड़कर जायदाद की मालिकाना प्रथा को खत्म कर दिया जाय और मौजूदा मुनाफाखोरी की जगह एक आदर्शवादी सहकारी ढाँचा खड़ा किया जाय।"

हम देश में लोकतांत्रिक समाजवाद चाहते हैं। जिसका रूप निखर रहा है और यह जनतन्त्र के माध्यम से स्थापित होगा। बहुत से ऐसे देश हैं, जो समाजवादी तो हैं, लेकिन लोकतन्त्री नहीं हैं। कुछ ऐसे हैं जो जनतन्त्र में तो विश्वास करते हैं लेकिन वह समाजवादी व्यवस्था को नहीं अपनाना चाहते। भारत मध्यममार्गी है। हम चाहते हैं कि देश का पूर्ण रूप से आर्थिक विकास हो, समानता हो, धन का वितरण हो, शक्ति समाज के हाथों में रहे, लेकिन यह सब हो; शांतिपूर्ण तरीकों से। जो भी रास्ता अपनाया जाय, उसका आधार जनता की इच्छा और उसकी आकांक्षा हो।

इस व्यवस्था को, आने में देर लगेगी और इसका कारण यही है कि सत्तारूढ़ दल में विचारों की विभिन्नता बहुत है, सोचने का ढंग भी अलग है तथा जिस ढंग से कार्य को किया जा रहा है, वह जनता की भावना के अनुसार नहीं है।

अटूट विश्वास

समाजवाद पर अपनी अटूट आस्था नेहरू ने इन शब्दों में व्यक्त की :

"—अमीरों की फिजूलखर्ची और गरीबों की कंगाली दोनों ही शर्मनाक और बेहूदा बातें हैं और मैं इन्हें मिटाना चाहता हूँ। मैं पिछले ५० साल से समाजवाद में विश्वास करता आया हूँ और जब तक कोई यह न साबित कर दे कि मेरा यह विश्वास गलत है, तब

तक समाजवाद में मेरा विश्वास बना रहेगा और मैं उसके लिए काम करता रहूँगा।"

रामराज्य — समाजवाद

गांधीजी के रामराज्य का उद्देश्य भी जहां तक भावना का सवाल है, इसी से मिलता-जुलता है।

"—ग्राम-राज्य की हमारी एक कल्पना है। इसमें ग यानी गर्व और गरीबी को निकाल दें, तो राम-राज्य स्थापित हो जायगा।

राम-राज्य स्वराज्य का आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज्य। रामराज्य में एक ओर अथाह सम्पत्ति और दूसरी ओर करुणाजनक फाकेकशी नहीं हो सकती। उसमें कोई भूखा मरने वाला नहीं हो सकता, रामराज्य का अर्थ है कम-से-कम राज्य। उसमें लोग अपना बहुत कुछ व्यवहार परस्पर मिलकर अपने-आप चलायेंगे। उसमें सब धर्म और सब वर्ग समान भाव से मिल-जुल कर रहेंगे और धार्मिक झगड़े या क्षुद्र स्पर्धा अथवा विरोधी स्वार्थ सरीखी चीज ही न होगी। उसमें आंतरिक कलह न होगा और न विदेशों के साथ ही लड़ाई होगी। उसमें दूसरे देशों को लूटने की, जीतने की या उनके व्यापार-धन्धे को नाश करने वाली नीति न रहेगी। सारे मतभेद, विरोध, झगड़े अहिंसक मार्ग से ही निपटा करेंगे।"

बातें नहीं—कर्म

लोकतांत्रिक समाजवाद का निर्माण न बातों से होगा न ईंट-गारे से। इस सम्बन्ध में **त्रिपथगा** में लिखा है :

"—किसी राष्ट्र की शक्ति, उसकी उन्नति, उसका विकास और उसका गौरव केवल उसकी भौतिक सम्पन्नता पर निर्भर नहीं करता।

ईंटें और पत्थर जोड़ने से, इमारतों, नहरों, सड़कों और पूलों को बनाने से मनुष्य का कल्याण नहीं हो जाता : मनुष्य के समाज की रचना मनुष्य से होती है और मनुष्य चेतनाशील प्राणी है। मनुष्य मनुष्यता से पीछे पग हटाले, तो उसकी ही बनाई हुई उसकी दुनिया, जिसे उसने अपने कल्याण के लिए बनाया था, उसके लिए घातक हो जाती है और स्वयं मनुष्य अपने ही निर्मित संसार को अपने ही हाथों नष्ट भी कर देता है।

फलत: वास्तविक निर्माण और रचना ईट और पत्थरों के आधार पर नहीं; प्रत्युत मानव के चिन्मय प्राणों के आधार पर होती है। आज भारत राष्ट्र-क्रिया में संलग्न है। पर उस क्रिया की पूर्ति जहां भौतिक समृद्धि के बिना नहीं हो सकती, वहां यह भी निश्चित है कि उस समृद्धि का उपयोग समुचित रूप से तब तक नहीं हो सकता जब तक देश के मानव का निर्माण न कर दिया जाय। मानव की रचना होती है उसकी नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अंतश्चेतना के उन्नयन से।"

भाषण नहीं—रोटी

समाजवाद को जन-साधारण की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयत्न ही नहीं करना है, बल्कि यह उसका उत्तरदायित्व भी है।

स्वामी विवेकानन्द से मिलने एक अमरीकी सज्जन भारत में आये। उन्होंने कहा—'स्वामीजी अमेरिका में आपके भाषणों की बहुत धूम थी—यहाँ आप भाषण क्यों नहीं करते।'

स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया, "यहां की जनता को भाषण की नहीं, रोटी की जरूरत है। हमारे देश में एक कुत्ता भी भूखा है, तो धर्म की बात व्यर्थ है पर वस्तुस्थित यह है कि एक कुत्ते के भूखे रहने की बात क्या बल्कि इन्सान भी भूखा है।"

परन्तु समाजवाद में सब जिम्मेदारी हम राज्य पर सौंपकर

निश्चित नहीं हो सकते।

राष्ट्र-निर्माण के लिए हमें एकमात्र शासन के मुंह की ओर ही नहीं देखना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंग है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी क्रिया द्वारा राष्ट्र के हित का कर्म स्वयं करें, जैसे शरीर के अंग पूरे शरीर के लिए काम करते हैं। हाथ शरीर का रक्षण करते हैं। आंखें खतरों से सावधान करती हैं—वैसे ही व्यक्ति को राष्ट्र के लिए कर्त्तव्य करने में उद्यत रहना चाहिए।

विश्वराज्य

सन् १९३६ में कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में पण्डित नेहरू ने कहा :

"—समाजवाद के विषय में एक अजीब तरीका यह है कि जिसका अंग्रेजी भाषा में एक निश्चित पारिभाषिक अर्थ है, उसे बिलकुल दूसरे अर्थ में प्रयोग करना। विचारों के लेन-देन में, व्यक्तियों द्वारा शब्दों को अपने ही मनमाने ढंग से प्रयोग करने से, कोई लाभ नहीं होता। कोई अपने को इंजन ड्राईवर कहे और बाद में कहे मेरा इंजन लकड़ी का है और उसे बैल खींच रहे हैं, वह इंजन ड्राइवर शब्द का दुरुपयोग करता है।

मेरा विश्वास हो गया है कि दुनिया की और भारत की समस्याओं की एकमात्र कुंजी समाजवाद है।

सच्चा एक विश्व-राज्य और विश्व-शान्ति तभी हो सकती है, जब समाजवाद सारी दुनिया में हो जायगा।"

प्रतिक्रियावादी कम्यूनिस्ट

त्रिचूर में २६ दिसम्बर सन् १९५५ को भाषण करते हुए उन्होंने कहा :

"—आज अगर मुझसे कोई कहे, तो उससे किसी को कोई फायदा नहीं होगा कि १६० वर्ष पहले फ्रेंच क्रान्ति में क्या हुआ था। दुनिया में १६० वर्षों में बहुत कुछ अदल-बदल हो गया। मुझे कोई यह बताये कि रूस में ३८ साल पहले क्या हुआ था, बड़ी क्रान्ति में उससे कोई फायदा नहीं। रूस के हालात रूस के लिए विशेष रूप से अलग थे। वे हिन्दुस्तान में नहीं हैं। हमारे हालात अलग हैं। हम फ्रेंच क्रांति से, रूसी क्रांति से सबसे सीखें और भी दूसरी क्रांतियों से सीखें। मगर हमको अपना रास्ता खुद खोजना पड़ेगा। बदनसीबी यह है कि हमारे कम्यूनिस्ट पार्टी के दोस्तों ने अपने दिमाग ऐसे बन्द कर लिये हैं और अपना वक्त और शक्ति कुछ नारे रटने में जाया का है कि हिन्दुस्तान में क्या हो रहा है यह वे समझ नहीं पाते। एक जमाने के कम्यूनिस्ट पार्टी के क्रांतिकारी अब प्रतिक्रियावादी हो गये हैं।"

मार्क्स के विचार

मार्क्स के विचारों के बारे में, जिसको कम्यूनिस्ट अपने ढंग से तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं। पण्डित नेहरू ने १९३४ में **विश्व-इतिहास की झलक** में लिखा है :

"मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का उपदेश नहीं दिया।"

मेरी कहानी में लिखा है :

"—विचारों के कट्टरपन का विरोध और वैधानिक दृष्टि मुझे मार्क्सवाद में अच्छी लगी।"

यूनिटी ऑफ इण्डिया में फरवरी १९३९ में एक लेख में लिखा :

"—मार्क्स का दर्शन मुझे व्यापक रूप से अच्छा लगा। उससे इतिहास की प्रक्रिया समझने में मुझे मदद मिली। मैं कट्टर मार्क्सवादी बिलकुल नहीं हूँ। मुझे तो कोई भी कट्टरपन जरा भी पसन्द नहीं।"

स्वार्थ त्याग की भावना

किसी भी देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक हों, सहायक हों। जिस जगह अपना स्वार्थ—केवल मात्र अपना स्वार्थ देखता है—मनुष्य देखता है, वहाँ की स्थिति गम्भीर हो जाती है और ऐसे में जो ताकतवर होगा, वही लाभ में रहेगा। इस स्थिति में सुधार का केवल एक ही मार्ग रह जाता है और वह है कि मनुष्य में स्वार्थ-त्याग की भावना पैदा होनी चाहिए।

किसी भी सरकार का सबसे पहला कर्त्तव्य यह होता है कि जब भी दुखी जनता शांतिपूर्ण ढंग से और वैधानिक तरीके से अपनी माँगें प्रस्तुत करे, उस पर गम्भीरता से विचार करके उनकी न्यायोचित माँगों को स्वीकार किया जाय। और ऐसे लोगों को कड़े-से-कड़ा दण्ड दिया जाय, जो कानून को अपने हाथ में ले लेते हैं।

समता ही साधन है

संत विनोबा भावे ने भी समानता पर जो समाजवाद का आधार है, अपने विचार प्रगट किये हैं :

"—उपनिषदों में जहां यह कहा गया है कि अमर जीवन की सिद्धि धन-वैभव द्वारा नहीं होती, तब उसका यह अर्थ हरगिज नहीं है कि पार्थिव सम्पत्ति का जीवन में कोई मूल्य ही नहीं है, अथवा वह एक स्वप्निल छाया है। इसका अर्थ जो कि सारे इतिहास-काल में सिद्ध हुआ है, यह है कि पार्थिव सम्पत्ति केवल साधन है। इसी को जीवन-सर्वस्व मानकर जो अपने स्वरूप को भूल जाते हैं, वे स्वतः सिद्ध अमरता को भूलकर विनाशी और मर्त्य वस्तु को अमर मान बैठते हैं, और इस प्रकार अपने आप दुखी होते हैं और दूसरों को दुखी बनाने के निमित्त बनते हैं। सारी परम्पराओं के मुख्य प्रवर्त्तक ममता-त्याग पर—निजी और वैयक्तिक मर्यादित ममता को विस्तृत

करने पर, उसे सार्वजनिक बनाने पर—जोर देते हैं। सार्वजनिक ममता का अर्थ है दूसरे के साथ अभेद-साधना या आत्मौपम्य साधना। इसी का दूसरा नाम समता है। ममता जब संकुचित से व्यापक बनती है, तभी वह समता नाम से पहचानी जाती है। दोनों के मूल में प्रेमतत्व है। जब यह प्रेम संकीर्ण और संकीर्णतर होता है, तब वह ममता और जब वह निर्बंध रूप से विकसित होता है, तब समता कहलाता है। यही समता धर्म मात्र का अन्तिम साध्य है।"

कुछ लोग गांधीवादी—समाजवाद की बात करते हैं, लेकिन इस प्रकार की स्पष्ट विचारधारा कभी सामने नहीं आई। वैसे गांधीवाद में समाजवाद की अनेक मौलिक मान्यताएं तो हैं, लेकिन यह दोनों अलग सिद्धान्त हैं।

समाज के आधार पर

समाजवाद आज भारत के सामने जीवन और मरण के प्रश्न की तरह है। जनता की गरीबी हमें दूर करनी है और उसे वैयक्तिक स्तर पर दूर नहीं किया जा सकता। कोई सरकार यह दावा करे वह जनता की किसी भी समस्या का हल वैयक्तिक रूप से कर सकती है, तो वह उसकी बहुत बड़ी भूल है। उनको केवल समाज के आधार पर ही जिसमें व्यापकता हो, हल किया जा सकता है। कांग्रेस के अनेक निहित स्वार्थवादी जनतांत्रिक समाजवाद का विरोध करते हैं—क्योंकि इसके सफल हो जाने से पूंजीवाद-मुनाफाखोरी समाप्त हो जायगी।

समाजवाद की ओर से जनता का ध्यान हटाने के लिए कांग्रेसी लोग गांधीवाद का नारा लगाने लगते हैं। गांधीवाद एक बिल्कुल अलग विचारधारा है समाजवादी विचारधारा का रूप अन्तर्राष्ट्रीय है, जबकि गांधीवाद विशुद्ध रूप से भारतीय है और उस पर भारतीय संस्कृति तथा मानवतावाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित

होता है। फिर भी मूलभूत अन्तर अधिक नहीं है, धार्मिकता का पुट उसमें होने से मनुष्य अपने को अधिक कर्त्तव्य में बँधा हुआ अनुभव करेगा।

यह युग विज्ञान और टेकनालॉजी है। जब तक हमारा चरित्र निष्कलंक और शुद्ध नहीं होगा, तब तक हम समाजवादी रचना ठीक प्रकार से नहीं कर सकेंगे। भारत की जनता में आज भी अशिक्षा और पुराने सामंतवादी संस्कार इतने घनीभूत हैं कि अब भी वह पुराने राजाओं को ईश्वर का रूप मानती है। इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि एक तपे-तपाये कार्यकर्ता के सामने चुनाव में राजा या उसका प्रतिनिधि जीत जाता है।

आज भी हम ऊँच-नीच के मोह में, झूठे पाखण्डों के मायाजाल में फँसे हैं और उससे निकलना भी नहीं चाहते।

सद्भावना

लोकतांत्रिक समाजवाद लाने का सबसे बड़ा साधन सद्भावना होगा। जब तक जन मानस में सद्भावना का अंकुर न फूटे, तब तक बहुत मुश्किल है।

इस सम्बन्ध में महर्षि रमण के निकटवर्ती पाल ब्रंटन के शब्द ध्यान देने योग्य हैं :

"— सद्भावना के लिए कानून नहीं बनाया जा सकता। कानून के जरिये देश में सद्भावना नहीं फैलाई जा सकती। समाजवाद की ज्वलंत मशालें ले-लेकर लोग आज निकल पड़े हैं; किन्तु क्या यह लोग जानते हैं कि जब तक सद्भावना का स्नेह इन मशालों में न उंडेला जायगा, तब तक ये मशालें रोशनी न दे पायेंगी ? सद्भावना का मतलब है, अमीर और गरीब, छोटे और बड़े सबके प्रति शुद्ध, निश्चल हृदय से सद्भावना। जब तक प्रत्येक नागरिक—राजा से लेकर रंक तक—अपने सहचारी नागरिकों के प्रति सद्भावना के

द्वार खुले नहीं रखेगा, तब तक समाजवाद की मंजिल तय नहीं होगी। जीवन भीतर से निकल कर ही बाहर बहता है, बाहर से भीतर नहीं। भीतर से निकले यह बहाव जब चौराहे पर आपस में मिलेंगे, तब सब एक मन, एक रूप हो जायगा। दिलों का यह मिलन ही समाजवाद की सच्ची नींव है—ऊपर की गिनती थोथी है, बाड़े के पशुओं को लाठी से हाँकना है, चाहे वह लाठी डंडे की हो, चाहे दिमाग को।"

शुभ को समझो

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी आध्यात्मिक भाषा में शुभ और अशुभ की चर्चा करते हुए बताया है कि मनुष्य को हर स्थिति में अपने को प्रसन्न रखना चाहिए और उसे सुख के लिए सतत चेष्टा-शील रहना चाहिए। उन्होंने कहा है :

"—जगत मेरे लिए है, मैं जगत के लिए कदापि नहीं हूं। शुभ-अशुभ सभी मेरे दास हैं, मैं उनका दास कदापि नहीं हूं। जिस अवस्था में पड़ा है, उसी अवस्था में पड़े रहना पशु का स्वभाव है। मनुष्य का स्वभाव है—अशुभ छोड़कर शुभ प्राप्त करने की चेष्टा करना; और शुभाशुभ किसी के लिए भी चेष्टा न करना, सर्वदा सब अवस्थाओं में आनन्दमय होकर रहना ईश्वर का स्वभाव है। हमें ईश्वर होना होगा। हृदय को समुद्र के समान महान् बना लो, संसार के क्षुद्र भावों से परे चले जाओ, इतना ही नहीं अशुभ आने पर आनन्द से उन्मत्त हो जाओ; जगत को एक तस्वीर के समान देखो और यह जानकर कि जगत में तुम्हें कोई भी वस्तु विचलित नहीं कर सकती, जगत के सौन्दर्य का उपभोग करो। जगत में सुख इस प्रकार है जैसे छोटे-छोटे लड़के खेल करते-करते कीचड़ में काँच की गुरिया पा जाते हैं। जगत के सुख-दुःख के ऊपर शांतभाव से दृष्टिपात करो, शभ और अशुभ दोनों को एक दृष्टि से देखो। दोनों

ही भगवान के खेल हैं इसीलिए सभी में भगवान का अनुभव करो।"

सप्तर्षि का मार्ग दर्शन

मन की शुद्धता ही विचारों को निर्मल बनाती है और वही कर्म को गति देती है, एक भावना देती है। इस बारे में सप्तर्षि का प्रवचन भी मननीय है।

'— तीनों लोकों में ऐसा वशीकरण-मंत्र और दूसरा नहीं है, जो विष को भी अमृत बना ले और वह है मन का माधुर्य।

अतुल धन-सम्पत्ति पाकर भी प्रायः मनुष्य उसका उपभोग नहीं जानते। गले तक जल में डूबे रहने पर भी कुत्ता जीभ से ही चाटकर पानी पीता है।

सब शुद्धताओं में धन के व्यवहार की शुद्धता ही सच्ची शुद्धता है, मिट्टी और जल की शुद्धता तो बाहरी विधान हैं।

जितना ग्रास निगला जा सके, निगलने पर, जो पचाया जा सके, पच जाने पर जो पोषण दे, उतना ही खाये। जैसे यह भोजन के प्रसंग में सही है, वैसे ही कर्म के प्रसंग में भी।

यदि तुम एक ही उपाय से सारे जगत को वश में करना चाहते हो तो पर-निन्दा रूपी घास चरने को सदैव लोलुप इस वाणी रूपी गाय को वश में रखो।

अनीति द्वारा उपर्जित धन-सम्पदा से दरिद्रता ही अच्छी है। शरीर की दुर्बलता सबको मान्य हैं, पर जलोदर का रोग नहीं।

अपने आपको वशीभूत न कर पाना विपत्ति का मार्ग है और अपने-आपको वशीभूत कर लेना सम्पति का मार्ग। जो मार्ग आपको भावे, उसी पर पाँव रखिये।"

गांधी का स्वराज्य

गांधीजी ने कहा है कि :

"—स्वराज्य में यह नहीं होना चाहिए कि मुठ्ठी भर धनी लोग रत्न-जटित प्रासादों में रहें और हजारों-लाखों लोग हवा और प्रकाश से रहित कोठरियों में पशुओं का-सा जीवन बितायें। स्वराज्य का आशय यह है कि यह जितना किसी राजा के लिए होगा, उतना ही किसान के लिए, जितना किसी हिन्दू के लिए, उतना ही मुसलमान के लिए, जितना जैन, यहूदी और सिखों के लिए होगा, उतना ही पारसियों और ईसाईयों के लिए। उसमें जाति-पांति, धर्म या दरजे के भेद-भाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।"

इसके साथ-साथ गांधीजी ने कहा : "सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलाया जाना चाहिए। एक सच्चे जनतंत्र में शक्ति, शासन सत्ता एवम् राष्ट्र-निर्माण के सभी क्रिया-कलापों को ऊपर से नीचे की ओर नहीं, अपितु नीचे से ऊपर की ओर होना चाहिए। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शकल में होना चाहिए। जिन्दगी मीनार की शकल में नहीं होना चाहिए, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शकल में होनी चाहिए और व्यक्ति उसका केन्द्र-बिन्दु होना चाहिए।"

लोकतांत्रिक समाजवादी विचारधारा में और गांधीजी की विचार धारा में बहुत अधिक अन्तर नहीं है।

नैतिक आदर्श

गांधीजी भी व्यक्ति को ही स्वतंत्रता का केन्द्र-बिन्दु मानते थे। वह कभी शासन की स्वतंत्रता पर नहीं, बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसकी गरिमा पर जोर देते थे। उनकी मान्यता थी कि समाज व्यक्तियों की इकाई की एक विशिष्ट योग है, न कि

व्यक्ति समाज की एक विशिष्ट इकाई का टुकड़ा। इसीलिए किसी भी राष्ट्रीय समाज के स्वराज्य का अर्थ उनकी दृष्टि में उस समाज के व्यक्तियों के स्वराज्य (आत्म-शासन) का योग है। वह मनुष्य की उस हर सत्ता से मुक्ति चाहते थे, जो मनुष्य पर किसी भी प्रकार का बंधन लगाती है। उनकी एक ऐसे उन्नतिशील समाज की कल्पना थी, जहां सभी के सुख-दुख और लाभ-हानि एक होंगे, सामाजिक होंगे। जहां के मतभेद समाज ही सुलझायेगा, उसमें अदालत और पुलिस की आवश्यकता नहीं होगी।

गांधीजी का समाजवादी व साम्यवादी तौर-तरीकों से विरोध था। वह लोग जिस प्रकार अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उचित-अनुचित, हिंसा-अहिंसा का खयाल नहीं करते हैं। यह गांधीजी को पसन्द नहीं था। समाजवाद में जो मानवतावादी सिद्धान्त हैं, उससे गांधीजी पूरी तौर पर सहमत थे और उसे वह कोई नया सिद्धांत नहीं मानते थे, वह तो उसे अपरिग्रह, अद्वैतवाद और उपनिषद् के सिद्धांतों का ही एक रूप मानते थे।

उन्होंने कहा है : "मैं इतना ही जानता हूं कि उसका उद्देश्य निजी सम्पत्ति की संस्था को मिटाना है। यह तो अपरिग्रह के नैतिक आदर्श को अर्थ के क्षेत्र में प्रयुक्त करता चलता है। यदि लोग इस आदर्श को स्वेच्छा से स्वीकार करलें, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है।"

रूस का समर्थन

गांधीजी शान्तिपूर्ण समझौतावादी ढंग से कार्य करना पसन्द करते थे, लेकिन इसके बाद भी उन्होंने रूसी क्रान्ति और उसके नव-निर्माण के महान् प्रयत्नों और उनकी कल्पनाओं की कभी आलोचना नहीं की।

उन्होंने कहा : "इसमें कोई संन्देह नहीं है, कि बोल्शेविक आदर्श के पीछे असंख्य पुरुषों और स्त्रियों के, जिन्होंने उसकी सिद्धि के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया—शुद्धतम त्याग का बल है और एक ऐसा आदर्श जिसके पीछे लेनिन जैसे महापुरुषों के प्यार का बल है, कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। उसके त्याग का उज्ज्वल उदाहरण चिरकाल तक जीवित रहेगा और ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों वह इस आदर्श को अधिकाधिक शुद्धि और वेग प्रदान करता रहेगा।"

एक बार गांधीजी ने यह भी कहा कि : "मैं पक्का कम्यूनिस्ट होने का दावा करता हूं।" यह सही भी है, भारतीय संस्कृति की महान् और शानदार गौरव गरिमाओं से मण्डित गांधीजी शान्तिपूर्ण ढंग से समाजवाद (रामराज्य) लाने के पक्षपाती थे।

लचक होनी चाहिए

पण्डित नेहरू देश के नौजवानों को हमेशा ललकारते रहे कि तुम्हें देश की बागडोर संभालनी है, वे उनके आलस्य और पुराने संस्कारों से लिपटे रहने को पसन्द नहीं करते थे।

"—मैं चाहता हूं कि आप लोगों में एहसान की क़ूबत पैदा हो। जो लोग बड़े हो जाते हैं, मेरी उम्र के लोगों में तो अक्सर लोच नहीं रह जाता। दिमाग से और जिस्म से भी! बुढ़ापे की निशानी क्या है? लोच का न रह जाना। आपके जिस्म का लोच-लचक कम हो जाय, तो जिस्म बूढ़ा हो जायगा और दिमाग की लोच-लचक कम हो जाय तो दिमाग बूढ़ा हो गया। यह बात सही है कि अक्सर हिन्दुस्तानी पैदायशी बूढ़े होते हैं। उनके दिमाग में लचक नहीं होती। उनके जिस्म में जो थोड़ी-बहुत होती है, वह बहुत जल्दी चली जाती है। तो सवाल यह है कि कब तक आप जिस्म में और दिमाग में यह लचक यह लोच, कायम रख सकते हैं। जब तक आप रख सकते हैं आप बढ़ सकते हैं—आपका बढ़ना रुका नहीं है, जिस्म का

भी और दिमाग का भी। चाहे उम्र आपकी कुछ भी हो, जब यह बात नहीं रहती, जब आप में लोच नहीं रहता, उसके बाद भी आप बहुत दिनों तक जिन्दा तो रह ही सकते हैं, लेकिन फिर आप तरक्की नहीं कर सकते। तब न आपका दिमाग तरक्की करेगा और न आपका जिस्म।"

समाजवाद की दिशा में सहकारिता का महत्व है और वह इसी से स्पष्ट है कि भारत में ३ लाख सहकारी समितियां हैं, जिनमें ६ करोड़ ३६ लाख सदस्य हैं और उनकी कुल हिस्सा पूंजी २२० करोड़ रुपया होती है। इसके विपरीत देश में लगभग १६ हजार निजी कम्पनियां हैं, जिनकी चुकता पूंजी लगभग १००० करोड़ रुपया है। इससे यह स्पष्ट है कि कितने थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में कितनी पूंजी एकत्रित है और कितने कम लोग उसका लाभ उठाते हैं। इसलिए इस बात की जरूरत है कि समाज को काम सौंपा जाय, सहकारिता का तेजी से विकास किया जाय ताकि देश समाजवाद की दिशा में आगे बढ़े।

यह जिम्मेदारी न सरकार की है, न किसी विशेष व्यक्ति की। यह तो सबकी है, देश की है और युग के इस संदेश को, इस आवाज को हम अनसुनी नहीं कर सकते।

नेहरू का मूलमंत्र

पण्डित नेहरू की अन्तिम समय तक यही इच्छा थी कि वह देश को समाजवादी भारत के रूप में देखें और जीवन की अन्तिम सांस तक वह अपने को इसके लिए व्यस्त रखना चाहते थे। उनकी आकांक्षा यही थी। जो उनके ही शब्दों में है।

"—आगामी वर्षों में और जो कुछ भी मेरा जीवन शेष है, उसमें मैं अपनी पूरी बची ताकत और क्षमता के साथ भारत के पुन-

निर्माण में लगा रहूं। मैं इस काम को पूरे जोर से तब तक करते रहना चाहता हूं, जब तक कि मैं खत्म नहीं हो जाता हूं और खत्म हो जाने वाली चीजों के ढेर में नहीं फेंक दिया जाता।"

पण्डित नेहरू विज्ञान और शिल्प की शक्ति से तथा सामाजिक न्याय के आधार पर व्यवस्थित समाज की रचना करके सबका दुख-दर्द दूर करना चाहते थे। वह चाहते थे कि हरएक को समानता प्राप्त हो और संसार में कोई किसी पर निर्भर न रहे। सब अपने पैरों पर खड़े हों। यही उनके समाजवाद का मूलतंत्र था।

पहला कदम

गांधीजी ने इसी सम्बन्ध में कहा है :

"—समाजवाद के व्यवहार में पहला कदम है, खुद अपने हाथ-पैरों का इस्तेमाल करने की शिक्षा लेना। समाज में पूरी तरह से हिंसा और शोषण खत्म करने का यही एकमात्र कारगर तरीका है। जब तक हमारे बीच और आस-पास भूख, बेरोजगारी और भेदभाव मौजूद है, तब तक हमें समाजवाद की बात करने का कोई हक हासिल नहीं है।"

साधु वास्वानी ने भी इसी बात को दूसरे रूप में कहा है :

"—यदि भारत और संसार को आज किसी एक धर्म की आवश्यकता है, तो वह है गरीबों की पूजा का। युवको, यह महान्-कार्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। यह तुम्हारे जीवन को तपोपूत बना देगा। ईश्वर गरीबों की झोपड़ियों में निवास करता है। उनके आंसुओं और कराहों से, उनकी प्रार्थनाओं और आकांक्षाओं से ईश्वर तुम्हें पुकार रहा है।"

समाजवाद आयेगा

समाजवाद का यही सार-तत्व है कि हरएक को अपनी जरूरत

के मुताबिक मिले। न कोई नंगा रहे, न भूखा, न परेशान।

इस तरह का समाजवाद, जिसकी प्रतिज्ञा गांधीजी ने जनता से रामराज्य के रूप में की है, हमारे देश में आयगा।

: ७ :

विश्व-शांति

मनुष्य, मनुष्य से अधिक समय तक शत्रुता नहीं रख सकता। राष्ट्रों के मनोमालिन्य भी दूर हो सकते हैं, लेकिन मनुष्य को अगर सबसे अधिक भय किसी चीज से है और सबसे अधिक उसका कोई शत्रु हो सकता है; तो वह युद्ध है।

आज का युद्ध, मैदान में नहीं लड़ा जाता। शौर्य और वीरता के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

युद्ध का भय

युद्ध का यह भय जब तक निर्मूल नहीं कर दिया जाता, तब तक संसार में शांति की स्थापना नहीं हो सकती और न मनुष्य जाति सुखी हो सकती है।

भारत ने संसार को शांति और विश्व-बंधुत्व का संदेश दिया है। बुद्ध-महावीर सबका एक ही ध्येय था कि हिंसा का जड़-मूल से नाश हो। गांधीजी ने इसे आगे बढ़ाया।

भारतीय इतिहास में अशोक और अकबर दोनों महान् सम्राट् हुए हैं। दोनों ने शान्ति के लिए प्रयत्न किया, लेकिन भावना का अन्तर, अशोक को प्रियदर्शी बना गया और अकबर अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में असफल रहा।

कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने युद्ध और हिंसा का पूरा परित्याग कर दिया। बौद्ध धर्म ग्रहण कर उसकी शिक्षाओं के प्रसार के लिए अपने पुत्र तथा पुत्री तक को भेजा और इसका नतीजा यह हुआ कि यह धर्म विश्वव्यापी बना।

अकबर ने दीन इलाही को जन्म दिया। पर यह धर्म पनप नहीं सका। क्योंकि अकबर के धर्म और कर्म दोनों में अन्तर था। एक ओर तो अहिंसा का प्रचार और दूसरी ओर वह जीवन-भर युद्ध में ही फँसा रहा। यही कारण था कि वह अपने इस मिशन में सफल न हो सका।

गीता का संदेश

गीता में कहा गया है:

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

भगवान् कृष्ण ने कहा है—"जो व्यक्ति विश्वप्रेमी होता है, तथा किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता, जो संसार का मित्र होता है, जिसका हृदय करुण और आर्द्र रहता है, वही मेरा भक्त होता है, वही मुझे प्रिय होता है।"

शान्ति का उपदेश भारत ने सदैव संसार को दिया है।

विज्ञान यह चाहता है कि मानव, मानव के निकट आये, उसमें स्नेह का एक अटूट सम्बन्ध हो, लेकिन राजनीति इसके विपरीत आचरण करती है, वह मनुष्य के बीच में संघर्ष की दीवारें खड़ी करती है।

आज एक ओर संसार के सामने भयानक और विशाल आणुविक दानव खड़ा हैं और दूसरी ओर त्रस्त मानवता।

मानव का विकास

विचारक एलिस ने कहा है कि—"आज का युग आधुनिक राक्षस और नैतिक शिशु का युग है।"

आज संसार में जो कुछ कलह और तनाव है, उसका कारण यही है कि विभिन्न क्षेत्रों में मानव का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो सका है।

आज संसार भर का मानव एक सबसे बड़े और भयंकर रोग से ग्रसित है। उस रोग का नाम है समस्या रोग।

सामाजिक बन्धन जो कि मनुष्य को एक सूत्र में बाँधे हुए थे, टूट गये हैं। आज मनुष्य बहुत बड़े संकट के दौर से गुजर रहा है।

मानव का समाज से अटूट सम्बन्ध था। समाज के आंगन में उसका जन्म होता था, समाज की गोद में पालन-पोषण और समाज से ही उसे विकास और प्रकाश मिलता था और उसका अन्त भी समाज की ही शान्तिदायिनी छाया में होता था। पर आज स्थिति कितनी बदल चुकी है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आज समाज में न उसे स्नेह मिलता है न सद्भावना। आज समाज ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मतभेद और संघर्षों की आग में झुलस रहा है। अविश्वास की भावना इतनी गहराई में जड़ें जमा चुकी हैं कि मनुष्य मनुष्य के पास बैठना भी पसन्द नहीं करता।

हिंसा का जन्म

अविश्वास की भावना हिंसा को जन्म देती है। जब मनुष्य के मानस में हिंसा का सर्प फुंकारने लगता है, उसका विवेक नष्ट हो जाता है। विवेकहीन मनुष्य पशु से अधिक खतरनाक होता है। आज का समाज पशु-प्रवृत्ति का बन गया है।

मार्कट्वेन का कथन है :

"—भूखा पशु मिले, तो उसे भोजन दे दो। वह कभी हानि नहीं पहुँचायेगा। मनुष्य का सदा भरोसा नहीं। यही दोनों में भेद है।"

संसार के इतिहास को हम उठाकर देखें, तो हमें पता लगेगा कि मनुष्य का अधःपतन इतना कभी नहीं हुआ। आज तो उसकी पशु-प्रवृत्ति सीमाओं को लांघ गई है। यह स्थिति मानवता को, मानव-सभ्यता को विनाश की ओर घसीटे ले जा रही है। मानव ने हजारों-

लाखों सालों में जो उपलब्धियां की हैं, वह समाप्त हो रही हैं। जीवन का मूल्यांकन राजनीतिक कसौटी पर न हो, बल्कि उसका सम्बन्ध मानवतावादी सिद्धान्तों से हो। राजनीति मानव को अपना शतरंज का मोहरा न बनाये, बल्कि होना यह चाहिए, मनुष्य ही राजनीति का मानवता के विकास कार्यों के लिए उपयोग करे।

गांधीजी का मानवतावाद

गांधीजी कहते थे मानव में ही ईश्वर की सारी शक्तियां भरी हुई हैं। भगवान भी अपने समस्त कार्यों को मानव का माध्यम बना कर करता है। मानव अपने भाग्य का विधाता है। गांधीजी की धारणा थी कि मानव, मानव का अहित नहीं कर सकता। मानव में विचारों की विभिन्नता हो सकती है, उनकी इच्छाओं की भी विभिन्नता हो सकती है। पर इससे संघर्ष का जन्म हो, यह नहीं होना चाहिए।

गांधीजी ने संघर्ष से हटने का एक ही उपाय बताया है, सत्य का आश्रय ग्रहण करो, अहिंसा को माध्यम बनाओ। समस्याओं का समाधान स्वयं निकलेगा। मानव के स्वभाव से उनका निकट का परिचय था। वह मानते थे, मानव बुद्धिजीवी हैं। उसके मन में ममता का सागर लहराता है। वह कभी भी संघर्ष की ओर प्रवृत्त न होगा।

मानव का स्वभाव निर्माण का है, वह विध्वंस की कल्पना नहीं कर सकता। निर्माण उसके मन को प्रेरणा देता है, आत्म-सन्तोष देता है। वह समझता है कि मैंने अपने जीवन में कुछ किया है। उसको इस प्रवृत्ति से जितनी भी उपलब्धियां हुई हैं उन सबका उपयोग समाज के लिए है विश्व के लिए है।

मनुष्य ने परिवार बनाया; समाज का निर्माण किया, राष्ट्र का भी वह निर्माता माना जाता है। उसे चाहिए कि वह विश्व का

निर्माता बने और बन रहा है वह विश्व का विध्वंसक।

पण्डित नेहरू ने कहा है :

"—तलवार हमेशा की तरह मूर्खों के लिए अपनी मूर्खता छिपाने का एक साधन है।"

सार्वजनिक आत्मघात

प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक और विचारक **बर्ट्रेण्ड रसेल** (जो ९२ वर्ष की आयु में आणविक अस्त्रों के परीक्षण के विरुद्ध प्रदर्शन करके जेल गये) ने कहा है :

"– यहाँ जो कुछ मैं कहने जा रहा हूँ, वह एक अंग्रेज, या योरोपियन अथवा पश्चिमी जनतन्त्र के सदस्य की हैसियत से नहीं, एक मनुष्य की हैसियत से, उस मानव जाति के एक सजीव अंग की हैसियत से, जिसका मूल अस्तित्व ही आज शंकास्पद हो गया है।

आज संघर्षों का बोलबाला है। यहूदी और अरब, भारतीय-पाकिस्तानी, नीग्रो और गोरे, कम्यूनिस्ट और कम्यूनिस्ट विरोधी—ये संघर्ष समस्त मानव समाज पर संकट की भयावनी घटाओं की तरह छाये हुए हैं।

अब जो युद्ध होगा, उसका अर्थ होगा सार्वजनिक आत्मघात। युद्ध के किसी शस्त्र-विशेष का उन्मूलन करने से न कभी कुछ हासिल हुआ है, न भविष्य में कभी होगा। हमें जिसका उन्मूलन करना है, वह है युद्ध।

अंग्रेज शरीर शास्त्री लार्ड एड्रियन ने भी इसी पर बल देते हुए कहा है—"हम इस सम्भावना से इनकार नहीं कर सकते कि बार-बार होने वाले परमाणु-विस्फोटों से एकऐसी रेडियो सक्रियता सर्वत्र व्याप्त हो जायेगी, जिसे न कोई सह सकेगा और न कोई उससे बच कर कहीं जीवित रह पायगा।"

एक मानव होने के नाते मैं सभी मनुष्यों से अपील करता हूँ कि वे अपनी मानवता को न भूलें। बस, अपने मानव-मात्र होने की बात वे याद रखें, बाकी सब भूल जायें। अगर हम ऐसा कर सके, तो हमारे सामने एक नये स्वर्ग का रास्ता खुला पड़ा है। अगर हमने ऐसा नहीं किया, तो फिर हम सबकी मृत्यु निश्चित है।"

संसार का विनाश

यह सही है कि आज विश्व के वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ इस बात का अनुभव कर रहे हैं अगर परमाणु युद्ध हुआ तो सम्पूर्ण संसार विनाश के कगार पर होगा।

अमरीका ने सन् १९४५ में परमाणु बम का परीक्षण किया और उसी वर्ष उसने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर लाखों निर्दोष नागरिकों की हत्या की और हरे-भरे नगरों को खण्डहर बना दिया था। इन दो नगरों पर जो बम गिराये गये, वे यूरेनियम २३५ फिशन परमाणु बम थे, जो कि एटम बम के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इसके बाद ही रूस और अमरीका ने फ्युजन बम बनाये, जिन्हें हाइड्रोजन बम कहते हैं। यह एटम से भी ज्यादा खतरनाक हैं। इसकी विध्वसंक शक्ति का अनुपात उसमें प्रयोग की गई टीएनटी (ट्रिनट्रोटुल्युएन) की मात्रा से लगाया जाता है। एक टीएनटीबम में एक टनटीएनटी होती है, जबकि हिरोशिमा पर गिराये गये बमों में २०००० टन थी। एक पौण्ड हाईड्रोजन में २६००० टन टीएनटी होती है। विध्वंसक शक्ति १०० मिलियन (१ मिलियन १० लाख) टन टीएनटी के बराबर होगा। यही बम १०० मैगाटन कहलाते हैं।

अभी तक ऐसा अनुमान है अमरीका, रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस

पण्डित नेहरू इस संसार में अकेले व्यक्ति थे, जिन्होंने आदर्श-हीन राजनीति के संकट को पहचाना और उसके विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की। उन्होंने संसार का ध्यान इस ओर खींचा कि अगर राजनीति से सत्य और ईमानदारी समाप्त हो जायगी, तो संसार फिर आदिम युग की बर्बरता के रंग में रंग जायगा।

भारत का योगदान

जवाहरलाल पंचशील लाये। यह ठीक है कि चीन ने पंचशील के पवित्र सिद्धान्तों को कुचला, लेकिन आज संसार में शांति का जो स्वर गूंज रहा है वह पंचशील की ही देन है।

भारत का और नेहरू का योगदान विश्वशांति के इतिहास में अमिट है। कई बार उन्होंने विनाश के संकट को टाला।

इण्डोनेशिया (१९४९) कोरिया (१९५१-५२) इण्डोचीन (१९५४-५५) स्वेज (१९५६-५७) कांगो (१९५९-६०)

इन देशों के संकटकाल में तीसरा विश्व-युद्ध शुरू हो सकता था, लेकिन नेहरू ने बीच में आकर संसार को महाविनाश से बचाया।

नेहरू ने अपनी आंखों से हिंसा का विनाशनृत्य देखा था। इसलिए उन्हें युद्ध से घृणा तीव्र-से-तीव्रतर होती गई।

१९३८ में पेरिस में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन में उन्होंने कहा :

"—मैंने अभी हाल ही में बार्सिलोना देखा। मैंने अपनी आंखों से वहाँ की इमारतों के खण्डहर देखे। मैंने वहां बम बरसते देखे हैं, जो अपने साथ मौत और तबाही का आलम लाते हैं। वह चित्र मेरे हृदय पर अंकित हो गया है और रोज जब मैं स्पेन और चीन से आने वाली बमबारी की खबरें पढ़ता हूँ, तो मेरे सीने में एक खंजर-सा उतर जाता है और इस भयानक दृश्य की कल्पना करके मेरा दिल रो उठता है। लेकिन इस चित्र के साथ ही एक दूसरा चित्र भी

है—स्पेन की बहादुर जनता का चित्र, जिसने बेमिसाल बहादुरी के साथ दो साल तक इन तबाहियों का मुकाबला किया है और उन्हें बर्दाश्त किया है और अपने खून और अपने बलिदान से एक ऐसा इतिहास लिखा है, जो युगों तक आने वाली नस्लों को प्रेरणा देता रहेगा। मैं भारत की जनता की ओर से स्पेनी गणतंत्र की इस महान् जनता को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।"

विश्वास जाग्रत हो

संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में २८ नवम्बर सन् १९४८ को नेहरूजी ने कहा :

"—मुझे भविष्य का जरा भी भय नहीं है। मेरे मन में कोई भय नहीं है। भारत के सैनिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण न होने पर भी मुझे कोई डर नहीं। मुझे बड़े राष्ट्रों, उनकी सेनाओं और उनके अणुबमों से तनिक भी भय नहीं। यही वह शिक्षा है, जो मेरे गुरु ने मुझे दी। हमने एक महान् और शक्तिशाली साम्राज्य का बिना किसी हथियार के मुकाबला किया। हमें इस दौरान इस निश्चर्या से ही शक्ति और प्रेरणा प्राप्त हुई हैं कि हम किसी बुराई के आगे न झुकेंगे। यही शिक्षा मेरे और मेरे देश के सम्मुख रहती है। मैं नहीं जानता कि किसी समस्या पर इसे लागू किया जा सकता है अथवा नहीं परन्तु मेरा विचार है कि यदि हम कठोर भाषा, कठोर कार्य और अन्ततः युद्ध के प्रति भय दूर करके विश्वास जाग्रत कर सकें, तो मेरे विचार में यह खतरा लेकर देखना चाहिए।"

अणुयुग के जनक **आइंस्टाइन** ने जब अपने कल्याणकारी आविष्कारों को विध्वंस के लिए प्रयोग होते देखा, तो वे बहुत घबराये और उन्होंने सन् १९४९ में प्रिंसटन विश्वविद्यालय की अपनी प्रयोगशाला में नेहरूजी को बुलाकर उनसे यह आग्रह किया कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग दुनिया में शांति कायम रखने में करें।

उन्होंने नेहरू से कहा कि आप संसार की उन ताकतों को, जो एटमी शक्ति से संसार का सर्वनाश करना चाहती है—सृजन के लिए उपयोग करने को मोड़ें।

आइंस्टाइन की आकांक्षा

सन् १९५० में आइंस्टाइन ने नेहरू को एक पत्र में लिखा :

"—सर्वनाश की स्थितियों से बचने के आप जो प्रयत्न कर रहे हैं, उनकी आलोचना नासमझ लोग कितनी ही करें, लेकिन मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि समझ-बूझ रखने वाले लोग आपके साथ हैं और आपके इस ईमानदारी के रवैये की तारीफ करते हैं।"

सन् १९५५ में आइंस्टाइन और बर्ट्रेंड रसेल ने एक विश्व-शासन दल (ग्रुप फार वर्ल्ड गवर्नमेंट) बनाया और उसकी ओर से प्रधानमंत्री नेहरू से फिर कहा :

"विश्वशांति के कार्यों को आगे बढ़ाकर आप मानवता की महानतम सेवा करें, जिस काम के लिए दुनिया का कोई दूसरा देश भारत जितना योग्य नहीं है।"

नेहरू ने भारत के वैज्ञानिकों से एक पुस्तक लिखवाई, जिसमें युद्ध से हानि और ऐटमी विस्फोटों से होने वाले नुकसानों का वर्णन था और उस किताब की भूमिका उन्होंने स्वयं लिखी।

परीक्षणों पर रोक

सन् १९५४ में नेहरू ने ऐटमी परीक्षणों को उस समय तक बंद करने की अपील की, जब तक इन हथियारों पर पूरी पाबन्दी लगाने का समझौता न हो जाय।

रूस ने १९६१ में परीक्षण न करने के अपने वादे को तोड़ दिया, तब नेहरू ने स्वयं मास्को जाकर ख्रुशोव से बात की।

राष्ट्रसंघ के शिखर-सम्मेलन में न्यूयार्क में जब सभी बड़े देशों

के मुखिया एकत्रित हुए, तो नेहरूजी भी उसमें थे। उन्होंने देखा कि ऐटमी लड़ाई के डर से अमरीकी तहखाने बना रहे हैं।

राष्ट्रसंघ की जनरल असेम्बली में पण्डित नेहरू ने इसी को लक्ष्य करके कहा :

"—बड़े अफसोस की बात है कि आज इन्सान उस खतरे का मुकाबला करने के बजाय, जो आज हमारे सामने है, जमीन के अन्दर बिल खोदकर चूहों की तरह रहने की बात सोच रहा है।"

शान्तिमय उपाय

२३-२४ जुलाई सन् १९३८ को अन्तर्राष्ट्रीय शांति आन्दोलन के सिलसिले में बुलाई गई परिषद् में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने भाषण करते हुए कहा :

"—मैं अपने करोड़ों देशवासियों की ओर से शांति के इस कार्य में पूरी सहायता का आश्वासन दे रहा हूँ। इसीलिए भी कि किसी भी दशा में हमारा पिछला इतिहास और हमारी सभ्यता भी हमें यही करने के लिए प्रेरित करती। स्वतन्त्रता के हमारे राष्ट्रीय संघर्ष में भी हमने इसी को अपना आदर्श समझकर शांतिमय उपायों को अपनाया है। इसीलिए हम बड़ी खुशी के साथ शांति के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

कल लार्ड सैसिल ने कहा था कि केवल युद्ध को मिटा देने से ही अन्त में शान्ति मिल सकती है। इस कथन से हम पूर्ण सहमत हैं। युद्ध को मिटा देने के लिए हमें युद्ध के कारणों और जड़ को मिटाना होगा। गुजरे जमाने में चूंकि हमने इस समस्या पर ऊपर-ही-ऊपर विचार किया, इसकी जड़ों को नहीं छुआ, इसलिए हम अब तक कोई भी काम की चीज नहीं पा सके। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति लगातार बिगड़ती गई और लाखों के लिए मृत्यु और अकथनीय कष्ट लाई है। अगर हम लड़ाई की उन जड़ों की ओर से लापरवाह बने रहेंगे,

तो हम फिर असफल होंगे और शायद उस असफलता में बरबाद भी हो जायँगे।

साम्राज्य बनाने का खयाल, जो साम्राज्यवाद या फासिज्म के रूप में काम कर रहा है, लड़ाई का जोरदार कारण है और जब तक वह नहीं मिट जाता, तब तक सच्ची और स्थायी शांति नहीं हो सकती। एक पराधीन देश के लिए कभी शांति है ही नहीं, क्योंकि शांति तो स्वतन्त्रता के साथ ही आ सकती है। आज की शांति में सहायता पहुँचाने वालों में हिन्दुस्तान एक शक्तिशाली अंग है और अगर विश्व संकट पैदा हुआ, तो यह स्थिति को बहुत कुछ बदल सकता है। इस मामले में उसे न तो कोई उपेक्षित कर सकता है और न वह ऐसा चाहता है। स्वतन्त्र भारत शांति की एक शक्तिशाली मीनार होगा।"

पाश्चात्य सभ्यता

एक पश्चिमी शान्ति प्रेमी का योरोप की सभ्यता पर एक व्यंग्य है।

"—बहुत अरसा हो गया। अफ्रीका के एक सघन क्षेत्र में पश्चिमी सभ्यता का संदेश देने के लिए एक डेलीगेशन गया। इस शिष्ट-मण्डल में समाज के हर तबके का प्रतिनिधित्व था। वैज्ञानिक, व्यापारी, वकील, डाक्टर, पादरी आदि।

अपनी सभ्यता की प्रशंसा के पुल बाँधते-बाँधते शिष्ट-मण्डल के एक सम्मानित सदस्य ने कहा—"तो सभ्यता को फैलाने के लिए ही दो भयंकर युद्ध लड़े गये हैं। जिनमें करोड़ों व्यक्ति मारे गये हैं।"

उस अफ्रीकी कबीले के एक नौजवान ने पूछा— "इतने आदमियों को आप लोगों ने खाया कैसे होगा।'

शिष्ट-मण्डल के सदस्य पादरी ने क्रास को सम्मान के साथ माथे से लगाया और परेशानी से बोला—"हम आदमियों को खाते

नहीं हैं, हमने उन्हें दफन कर दिया है।

अफ्रीकी नौजवान चौंका—"क्या बेहूदा सभ्यता है आपकी। केवल दफन करने के लिए ही करोड़ों आदमी मार दिये।"

अहिंसा परमो धर्मः

पश्चिमी सभ्यता और पूर्वी सभ्यता में यही अन्तर है। वहां हिंसा उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। जबकि हमारी सभ्यता में अहिंसा परमो धर्मः माना गया है।

नेहरू ने अपनी ओर से कोई ऐसा प्रयत्न बाकी न रखा, जो विश्व शान्ति के लिए न किया गया हो। अगर नेहरू ने युद्ध के दानवों को न रोका होता तो न जाने संसार का बहुत बड़ा हिस्सा कब का आग में भस्म हो गया होता!

संसार के समस्त देश दो हिस्सों में बंटे हुए थे। एक का नेतृत्व करता था रूस और दूसरे का अमेरिका और दोनों विचार धारायें एक-दूसरे को पसन्द नहीं थी। दोनों एक-दूसरे के कट्टर शत्रु थे। नेहरू ने एक बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने ऐसे देशों को एकत्र किया, जो इन दोनों गुटों से दूर रहें और नेहरू के नेतृत्व में इन तटस्थ राष्ट्रों ने विश्व-शान्ति के लिए बहुत काम किया।

उनका मत था कि संसार के सामने दो ही रास्ते हैं। एक तो मिल-जुलकर रहा जाय और शान्ति को दृढ़ किया जाय और दूसरा युद्ध के द्वारा एक-दूसरे को तबाह कर दें।

हिंसा-अहिंसा, सह-अस्तित्व और परम्परा-विनाश, शान्ति और युद्ध यह विचार धारायें एक-साथ ही कई दशकों से पनप रहीं थीं।

जहां घातक अस्त्र-शस्त्र विनाश की भयानक तैयारी में, मानवता को नष्ट करने के लिए उतारू हैं, वहाँ भारत पुत्र नेहरू भारतीय संस्कृति की उस महान् विचारधारा को जियो और जीने दो के लिए कृत-संकल्प रहे।

जहाँ संसार में आतंक और भय का सन्तुलन कायम था, वहाँ नेहरू ने सह-अस्तित्व की नयी विचारधारा दी।

एक नया पथ

नेहरू की बात मानकर अमरीका ने डलेस की युद्धवादी नीति को त्यागा और ख्रुशोव और कैनेडी का टेलीफोन सम्पर्क मित्रता, सहयोग और शान्ति की दिशा में अच्छा कदम था। अगर नेहरू ने यह वार्ता न कराई होती तो १९६२ में क्यूबा में तीसरा विश्वयुद्ध शुरू होकर संसार का विनाश करता।

नेहरू ने संसार को अपनी समस्यायें सुलझाने के लिए युद्ध का नहीं शान्ति, सहयोग और अहिंसा का रास्ता दिखाया।

पूर्व और पश्चिम के अन्तर को नेहरू ने समाप्त किया और जिस मध्य मार्ग तटस्थता के मार्ग को चुना वह पूंजीवादी और साम्यवादी व्यवस्थाओं के बीच का मार्ग था।

तटस्थता का मार्ग

युगोस्लाविया पहला देश था, जो कम्यूनिस्ट ग्रुप से अलग होकर नेहरू के तटस्थ शान्तिप्रिय क्षेत्र में शामिल हो गया था। नेहरू की सफलता इसी से आंकी जा सकती है कि आज फ्रांस भी इसी स्वतंत्र मार्ग का समर्थन कर रहा है।

रूस का सह-अस्तित्व को स्वीकार करना और अमेरिका के सम्बन्धों में सुधार करना, इस बात को जाहिर करता है कि आज युद्ध की सम्भावनाओं पर सोचना छोड़ दिया गया है।

नेहरू ने इस प्रकार एक नया विचार देकर संसार को विश्व-शान्ति के बहुत निकट ला दिया है।

जब नेहरू ने देखा कि उनके शान्ति क्षेत्र की बुनियाद पर अन्तर्राष्ट्रीय सह-अस्तित्व और सहयोग का वृक्ष फलने-फूलने लगा

है, तब उन्होंने राष्ट्रसंघ की जनरल असेम्बली के सामने यह सुझाव रखा कि संसार-भर में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना को फैलाने के लिए और इस प्रयोग को आगे बढ़ाने के लिए एक पूरा वर्ष चुन लियाजाय।

विश्व सहयोग का वर्ष

इसका असर यह हुआ कि राष्ट्र-संघ ने १९६५ का साल अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के वर्ष के रूप में मनाने का फैसला किया है।

विश्व-शान्ति की दिशा में नेहरू द्वारा दिखाया गया यह कदम बहुत महत्त्वपूर्ण है। नेहरू ने यह समझ लिया था कि दुनिया के उन सभी देशों की जनता जो अपनी आजादी के लिए संघर्ष कर रही है, उसका आपस में एक निकट सम्बन्ध है। उनको ऐसा अनुभव हुआ कि संसार में उस समय तक कभी शान्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती, जब तक संसार के किसी भी हिस्से में साम्राज्यवाद कायम है। यह ठीक है कि शान्ति और साम्राज्यवाद नदी के ऐसे दो किनारे हैं, जो कभी मिलने की सोच ही नहीं सकते।

इसलिए उन्होंने लन्दन में १९३८ में शान्ति सम्मेलन में घोषणा की थी कि जब तक हम साम्राज्यवाद को नहीं मिटा देंगे, तब तक दुनिया में शान्ति नहीं हो सकती।

जिन्दगी पर आस्था

नेहरू जिन्दगी को प्यार करते थे, वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि मानव समाज का संहार हो।

उन्होंने **मेरी कहानी** में लिखा है :

"अपने विचारों में डूबा हुआ अकेला बैठा-बैठा मैं एक के बाद एक कितनी ऋतुओं की विस्मृति की गोद में विलीन होते हुए देखता रहा। मैंने चद्रमा की कितनी ही घटती-बढ़ती कलायें देखी हैं, सितारों

के झुरमुटों को अपने विधान के अनुसार आकाश में विचरते देखा है। मेरे जीवन के कितने बीते हुए कल यहाँ दफन हैं और कभी अतीत के इन मुर्दा क्षणों के प्रेत मेरे सामने आते हैं, पुरानी यादों को जगा देते हैं और मेरे कान में पूछते हैं, क्या यह जीवन जीने योग्य था।"

विश्व इतिहास की झलक में उन्होंने लिखा है :

"—जीवन के अनेक रूप हैं, उसके रास्ते में दलदल भी है, लेकिन बड़े-बड़े सागर, पर्वत, हिमशिखर और ग्लेशियर भी तो हैं, उसमें तारों भरी सुहानी रातें और सगे-सम्बन्धियों और मित्रों का प्यार भी तो है, एक ही ध्येय के लिए संघर्ष करने वाले साथियों का भाई-चारा भी तो है, उसमें संगीत, पुस्तकें और विचारों का वह अनन्त साम्राज्य भी तो है।

अगर हम चाहें तो नीचे की घाटियों में, कुहरे की घुटन में रह सकते हैं, जिसमें शरीर को किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ता या अगर हम चाहें, तो ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ सकते हैं, जहाँ हमारे लिए और हमारे साथियों के लिए खतरा रहता है, लेकिन दूर-दूर तक मनोरम दृश्य का आनन्द ले सकते हैं और सूर्योदय का स्वागत कर सकते हैं।"

सिद्धान्तों की अडिगता

जो व्यक्ति सिद्धान्तों पर अडिग रहता है। वही कुछ कर सकता है। गांधीजी का यह सिद्धान्त कि सफलता अंत में अच्छे साधनों को ही मिलती है। नेहरू ने अपने जीवन में उतार लिया था बड़े-बड़े तूफानों में नेहरू नहीं डिगे और विश्वशांति के पावन ध्येय को आगे बढ़ाया, उन शक्तियों को प्रेरणा दी, सहयोग दिया, जो संसार में शांति और मानवता के कार्य को आगे बढ़ाना चाहती थीं। नेहरू विश्व का कल्याण सह-अस्तित्व तथा विचार-विनिमय में देखा करते

थे, न कि शस्त्रीकरण में।

विचार-संघर्ष

विश्व में इस तनाव तथा संघर्ष के कई कारण हैं। एक तो विचारधाराओं का अलगाव, दूसरा **मम सत्यम युद्धम** को मानने वाले। विज्ञान जितना ही विकास करता जाता है, उतना ही युद्ध का भय बढ़ता जा रहा है, क्योंकि विज्ञान के अनुसार विचारधाराओं के फैलाव का एक ही रास्ता रह गया है, वह है युद्ध।

विचारधाराओं का यह युद्ध संसार के लिए आज एक निर्णायक स्थिति के निकट आ पहुँचा है। संसार के कुछ भागों में अगर समता आई है, तो वहाँ स्वाधीनता का लोप हुआ है. और कुछ हिस्सों में स्वाधीनता है, तो वहाँ समता दिखाई नहीं देती।

इस प्रकार के विचारों के रूप में संघर्ष है। शांति के लिए यह आवश्यक है कि हम दूसरों के प्रति आदर तथा सद्भावना रखें, दूसरों के विचारों में सत्य को खोजें और समता के साथ स्वतन्त्रता को बनाये रखने के सामाजिक क्रांति के स्वरूप को और निखारें।

बेलग्रेड सम्मेलन हुआ, लेकिन उसमें यह विचार नहीं किया गया कि राजनीतिक और नैतिक शक्तियों का किस प्रकार संयोजन किया जाय। यदि इस दिशा में प्रगति की जाय, तो जो शक्तियां संसार को महायुद्ध की आग में झोंकना चाहती हैं। उनके लिए यह कठिन जरूर हो जायगा।

बेलग्रेड में इस संकट की गम्भीरता को अनुभव किया गया। परन्तु किसी में भी न तो राजनीतिक साहस और नैतिक दृष्टि ही थी कि वे इस पर कोई कदम उठा सकते। चाहिए यह था कि कोई तटस्थ राष्ट्र यह घोषणा करता कि अगर रूस और अमरीका ने युद्ध का बिगुल बजाया, तो समस्त तटस्थ राष्ट्र युद्ध आरम्भ करने वालों को मानवता का शत्रु घोषित करेंगे तथा हर सम्भव तरीके से जो

अहिंसात्मक ही होगा, उनका प्रतिरोध करेंगे।

निःशस्त्रीकरण हो

यह ठीक है कि तटस्थ राष्ट्रों ने संकट की घड़ियों को कई बार टाला है और यह भी हो सकता है कि अभी उसे और कुछ समय टाल सकें। लेकिन यह कोई हल नहीं है। यह समय है जब इन्हें नेहरू द्वारा प्रज्ज्वलित शांति की मशाल को मजबूती से अपने हाथों में थाम कर आगे बढ़ता है। पूर्ण निश्शस्त्रीकरण जब तक न हो, तब तक चैन नहीं लेना है। पूर्ण निश्शस्त्रीकरण के दृढ़ संकल्प को छोड़कर अगर हमने कोई दूसरा विकल्प स्वीकार किया तो यह संसार की शांतिपूर्ण जनता के साथ विश्वासघात होगा, मानवता के प्रति एक ऐसा जघन्य अपराध होगा, जिसकी मिसाल संसार के इतिहास में कहीं ढूंढने से भी नहीं मिलेगी।

यह चाहिए कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को इस बात के लिए मजबूर किया जाय कि वह पूर्ण निश्शस्त्रीकरण के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हो, अगर बड़े राष्ट्र इसके लिए सहमत नहीं होते हैं तो तटस्थ राष्ट्रों को उससे अलग हो जाना चाहिए।

इसके साथ ही उन्हें चाहिए वे एक विश्व-निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन करें। इन तटस्थ राष्ट्रों की सरकारों का ही यह कर्त्तव्य नहीं है, बल्कि वहाँ की जनता को भी संगठित रूप में इसके लिए कार्य करना होगा।

एक मोर्चा बने

यदि तटस्थ राष्ट्रों की जनता शांति की बाँसुरी पर सद्भावना और सह-अस्तित्व का स्वर निकालती है तो बड़े राष्ट्रों की जागरूक जनता भी उसका साथ देगी। इसमें सन्देह नहीं है। किसी भी राष्ट्र का सभ्य नागरिक कभी भी विध्वंस की कल्पना नहीं करेगा

मनुष्यता के विनाश की बात नहीं सोचेगा। इसका परिणाम स्वाभाविक रूप मे यह होगा कि विश्व का सामान्य नागरिक शांति की स्थापना के लिए एक महान् विश्व लोकक्रांति को जन्म देगा और उसके सामने युद्ध आकांक्षियों को घुटने टेक देने पड़ेंगे।

आज जरूरत इस बात की है कि सम्पूर्ण संसार की जनता युद्ध का विरोध करने के लिए एक मोर्चे पर खड़ी हो।

संसार कई करवटें बदल चुका है। राजाओं, नवाबों, तानाशाहों का युग समाप्त हो चुका है। लोक-शक्ति का महत्व बढ़ रहा है। सारी शक्ति का स्रोत तो जनता ही है। उसी में समस्त-शक्ति केन्द्रित है। यदि जनता ने यह ठान लिया कि हमें निःशस्त्रीकरण करना है तो वह अपने देश की सरकारों को इसके लिए मजबूर कर देंगी और अगर वहां की सरकारों ने इसे न माना तो जनता उन्हें विश्व-शांति के रास्ते में खतरनाक समझकर समाप्त कर देगी।

माओ का युद्धवाद

एक ओर जहाँ शांति के लिए इतने प्रयत्न चल रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर शांति को खतम करने के लिए भी कम प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं।

अपने को लेनिन के सिद्धान्तों का सबसे बड़ा समर्थक समझने वाले चीन के माओत्सेतुंग ने से चंगेजखाँ को चीन का राष्ट्रनायक बनाया है, जिसकी दृष्टि में मानवता का कोई मूल्य नहीं था। चंगेज खाँ की अस्थियों को पुराने स्थान से लाकर शानदार मकबरा बनवाया गया है।

चंगेज खाँ का शब्दार्थ है—सबसे बड़ा शासक। वैसे उसका असली नाम तेमुजिन था। वह चक्का मंगोल था। उसने लिमाओ, किन जो चीन के हरे-भरे इलाके थे तथा उसकी उत्तर की राजधानी पीपिंग को तहस-नहस कर दिया था। वह जिस मार्ग से भी उसे निकलता

बरबाद कर देता था और वहाँ की आबादी का कत्लेआम करा देता था। वह इस्लाम और ईसाइयत दोनों को मिटा देना चाहता था। उसको माओ ने अपना इष्ट माना है। चंगेज खां के चरण-चिह्नों पर चल कर ही माओ विश्वविजय के स्वप्न देख रहा है। मानवता को ध्वस्त करने का उसका इरादा है।

समय बदल चुका है। माओ के स्वप्न अधूरे ही रहेंगे। क्योंकि मानवतावादी आन्दोलन ने जनता को जागरूक किया है, वह विश्व-शांति के मूल्य को समझ चुकी है। वह किसी भी कीमत पर उन युद्ध-पिपासुओं को अपनी मनमानी करने का मौका नहीं देगी।

विश्व-शांति होगी

भारत की जनता कटिबद्ध है कि शांतिदूत नेहरू की विश्वशांति की कामना को पूरा करेगी। भारत के साथ-साथ समस्त राष्ट्रों का कर्त्तव्य है कि नेहरू ने शांति के जिस दीप को जलाया है, उसे प्रज्ज्वलित ही न रखा जाय बल्कि उसका प्रकाश संसार के कोने-कोने में फैलाया जाय। मानवता के जिस स्वर को नेहरू ने ससार में संयुक्त राष्ट्रसंघ के मंच से गुंजाया है, वह और मुखरित हो। सह-अस्तित्व के जिस नये दर्शन को नेहरू ने विश्व के सामने रखा है। वह प्रकाश स्तम्भ की तरह संसार का मार्ग आलोकित करता रहेगा।

अन्त में अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन के शब्दों में हम इतना ही कहेंगे कि पण्डित नेहरू की सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि संसार से युद्धों का नाम-निशान ही मिट जाय और सम्पूर्ण मानवता बिना किसी भय के सुखी और सानन्द रहे।
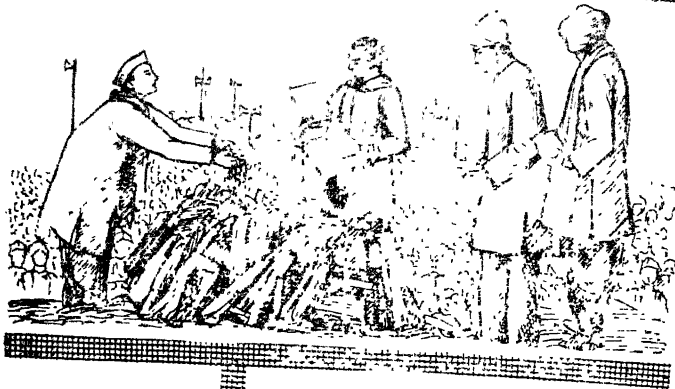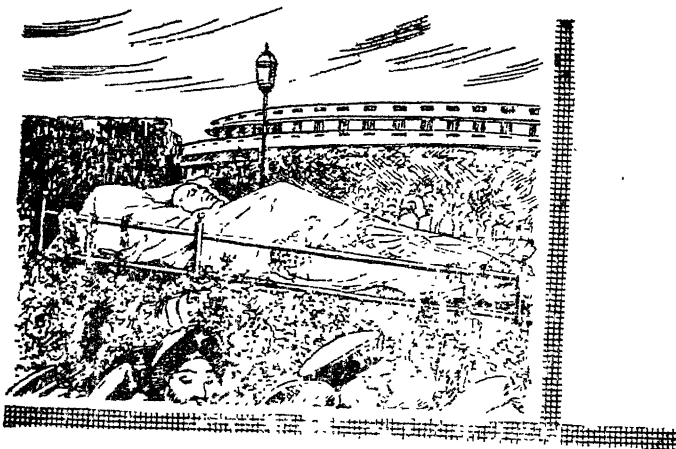
देश के नाम

युग-पुरुष की वसीयत

जो २१ जून १९५४ को लिखी गई और ३ जून १९६४ को प्रकाशित हुई

'—भारतीय जनता से मुझे इतना प्रेम व स्नेह मिला है कि मैं कुछ भी क्यों न करूं इस प्रेम व स्नेह का एक कतरा भी मैं प्रतिदान में दे नहीं सकता और दरअसल प्रेम जैसी बेशकीमती चीज का कोई प्रतिदान हो भी नहीं सकता है। बहुत लोग सराहे गये हैं, कुछ को श्रद्धा मिली है पर भारतीय जनता के सभी वर्ग के लोगों का स्नेह मुझे इतना ज्यादा मिला है कि मैं उसके बोझ से दब गया हूं, अभिभूत हो गया हूँ। मैं केवल यही कामना कर सकता हूँ, आगे जितने वर्ष भी मैं जीऊं अपने लोगों के लायक रहूँ और उनके प्रेम पाने की पात्रता मुझमें हो।'

'अपने असंख्य साथियों और सहयोगियों के प्रति मेरी कृतज्ञता और भी गहरी है। हम महान् कार्यों में साथ रहे हैं और इनकी सफलताएं और इनके दुःख, जो उनके साथ निश्चित रूप से जुड़े ही रहते हैं, हमने साथ-साथ जाने हैं।'

'मैं पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ यह कहना चाहता हू कि मृत्यु के बाद मैं अपने लिए कोई धार्मिक संस्कार किया जाना पसंद नहीं करता, मेरी इस तरह के संस्कारों में कोई आस्था नहीं है और रस्मी तौर पर भी इन्हें करना पाखण्ड होगा, अपनों को और दूसरों को भ्रम में डालने की एक कोशिश होगी।'

'मैं जब मरूं, तब मैं चाहूंगा कि मेरा दाह-संस्कार हो। अगर

मैं विदेश में मरूं, तो मुझे वहीं जलाया जाय, पर मेरी अस्थियां इलाहाबाद लाई जाएँ। इनमें से कुछ मुट्ठी गंगा में प्रवाहित की जाएँ और इनके अधिकांश हिस्से का मैं जैसे नीचे लिख रहा हूँ उस मुताबिक उपयोग किया जाए। इन अस्थियों का कोई भी अंश संरक्षित रखा न जाए।'

'मुट्ठी भर भस्मी इलाहाबाद में गंगा प्रवाहित करने की मेरी इच्छा के पीछे कोई धार्मिक बात नहीं है। इस बारे में कोई धार्मिक भावना नहीं है। बचपन से ही इलाहाबाद में गंगा और यमुना से मेरा लगाव रहा है, जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया हूं, वैसे-वैसे यह लगाव बढ़ता ही गया है। मैंने मौसम बदलने के साथ इनके बदलते रंगों और मूड़ों को देखा है और इतिहास, किंवदन्तियों, परम्पराओं, गीतों और कहानियों की उन सभी बातों पर अक्सर सोचा है, जो युगों से इनसे जुड़ती चली आई हैं।'

'खासकर गंगा, हमारे देश की नदी है, लोगों की प्यारी है और उससे हमारी जनता की जातीय स्मृतियां जुड़ी हैं उसकी आशा और उसका भय उसकी विजय का हर्ष और हार और जीत सभी चीजें तो उससे जुड़ी हैं। गंगा हमारी पुरानी सभ्यता व संस्कृति का प्रतीक रही है। हरदम बदलती और हरदम बहती हुई है। वह मुझे हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों और वादियों की याद दिलाती है जिनसे मेरा लगाव और प्यार बहुत ज्यादा रहा है। गंगा मुझे नीचे के उन शस्य श्यामल फैले हुए मैदानों की याद दिलाती है, जहाँ मेरी जिन्दगी और मेरे काम ढले हैं। सुबह की रोशनी में मुस्कुराती-नाचती गंगा मुझे याद आती है और शाम के सायों के साथ कृष्ण, उदास और रहस्यों से ओत-प्रोत होती हुई भी मुझे वह याद आती है—जाड़ों की संकरी, धीमी पर उसकी मोहने वाली लोच याद आती है, वर्षा में फैलती हुई, समुद्र होती हुई गर्जती याद आती है। गंगा में कहीं समुद्र जैसी विनाश की भी शक्ति मुझे लगती है और

इसकी यह मेरे लिए अतीत का प्रतीक व उसकी स्मृति है जो वर्त-
मान में प्रवाहित है और भविष्य के महा समुद्र में आगे बढ़ते रहने
को है···

···मेरी भस्मी का अधिकांश हिस्सा दूसरी तरह काम में लाया
जाए। मैं चाहता हूं कि इसे आकाश में ऊंचे एक विमान में ले जाया
जाए और खेतों के ऊपर जहाँ हमारे किसान मेहनत करते हैं, बिख-
राया जाए ताकि वह भारत की धूल और मिट्टी में सन जाए और
भारत का एक अनचीन्हा विनीत अंश हो जाए।'